

ISSN 0972-5636

# भारतीय आधुनिक शिक्षा

वर्ष 39

अंक 4

अप्रैल 2019



## पत्रिका के बारे में

भारतीय आधुनिक शिक्षा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की एक त्रैमासिक पत्रिका है। इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य, शिक्षाविदों, शैक्षिक प्रशासकों, शिक्षक-प्रशिक्षकों, शिक्षकों, शोधार्थियों एवं विद्यार्थी-शिक्षकों को एक मंच प्रदान करना है। शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा के विभिन्न आयामों, जैसे — बाल्यावस्था में विकास, समकालीन भारत एवं शिक्षा, शिक्षा में दार्शनिक एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य, ज्ञान के आधार एवं पाठ्यचर्या, अधिगम का आकलन, अधिगम एवं शिक्षण, समाज एवं विद्यालय के संदर्भ में जेंडर, समावेशी शिक्षा, शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा हेतु आई.सी.टी. में नवीन विकास, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा का स्वरूप, विभिन्न राज्यों में शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा की स्थिति पर मौलिक एवं आलोचनात्मक चिंतन को प्रोत्साहित करना तथा शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार एवं विकास को बढ़ावा देना। लेखकों द्वारा भेजे गए सभी लेख, शोध पत्र आदि का प्रकाशन करने से पूर्व संबंधित लेख, शोध पत्र आदि का समकक्ष विद्वानों द्वारा पूर्ण निष्पक्षतापूर्वक पुनरीक्षण किया जाता है। लेखकों द्वारा व्यक्त किए गए विचार उनके अपने हैं। अतः ये किसी भी प्रकार से परिषद् की नीतियों को प्रस्तुत नहीं करते, इसलिए इस संबंध में परिषद् का कोई उत्तरदायित्व नहीं है।

© 2019. पत्रिका में प्रकाशित लेखों का रा.शै.अ.प्र.प. द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित है, परिषद् की पूर्व अनुमति के बिना, लेखों का पुनर्मुद्रण किसी भी रूप में मान्य नहीं होगा।

### सलाहकार समिति

निदेशक, रा.शै.अ.प्र.प. : हृषिकेश सेनापति  
अध्यक्ष, अ.शि.वि. : राजरानी  
अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग : अनुप कुमार राजपूत

### संपादकीय समिति

अकादमिक संपादक : जितेन्द्र कुमार पाटीदार  
मुख्य संपादक : श्वेता उप्पल

### अन्य सदस्य

राजरानी, रंजना अरोड़ा  
उषा शर्मा, मधूलिका एस. पटेल  
बी.पी. भारद्वाज

### प्रकाशन मंडल

मुख्य व्यापार प्रबंधक : अबिनाश कुल्लू  
मुख्य उत्पादन अधिकारी : अरुण चितकारा  
उत्पादन सहायक : राजेश पिप्पल

### आवरण

अमित श्रीवास्तव

### हमारे कार्यालय

प्रकाशन प्रभाग  
एन.सी.ई.आर.टी. कैपस  
श्री अरविंद मार्ग  
नयी दिल्ली 110 016

फ़ोन : 011-26562708

108, 100 फ्रीट रोड  
होस्करे हल्ली एक्सटेंशन  
बनाशंकरी III स्टेज  
बेंगलुरु 560 085

फ़ोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन  
डाकघर नवजीवन  
अहमदाबाद 380 014

फ़ोन : 079-27541446

सी. डब्ल्यू. सी. कैपस  
धनकल बस स्टॉप के सामने  
पनिहटी  
कोलकाता 700 114

फ़ोन : 033-25530454

सी. डब्ल्यू. सी. कॉम्प्लैक्स  
मालीगाँव  
गुवाहाटी 781 021

फ़ोन : 0361-2674869

### मूल्य

एक प्रति : ₹ 50

वार्षिक : ₹ 200



# भारतीय आधुनिक शिक्षा

वर्ष 39

अंक 4

अप्रैल 2019

## इस अंक में

संपादकीय		3
शिक्षा का आशय	गिरीश्वर मिश्र	5
दोराहे पर है शिक्षा	पवन सिन्हा	12
समुदाय शिक्षण प्रतिमान	नीतिन कुमार ढाढोदरा	25
शिक्षक शिक्षा में एक श्रेष्ठ व्यवहार	भरत जोशी	
विद्यालयी शिक्षा में शांति शिक्षा	राखी गिरीराज धिंग्रा	32
	सुनीता मगरे	
गतिविधि आधारित विज्ञान शिक्षण आवश्यक क्यों?	संतोष कुमार मिश्रा	40
विज्ञान उपलब्धि परीक्षण	सुमित गंगवार	46
निर्माण तथा मानकीकरण	शिरीष पाल सिंह	
विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का अभिभावकीय प्रोत्साहन	शिखा श्रीवास्तव	56
एवं अध्ययन आदत के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन	किशोर हरिश्चन्द्र माने	
संस्कृत भाषा शिक्षण की एक नयी दृष्टि	रंजय कुमार पटेल	64
निर्माणवाद	शिरीष पाल सिंह	
संप्रत्यय संप्राप्ति प्रतिमान द्वारा संस्कृत व्याकरण शिक्षण	अरुणिमा	71
बच्चों की दुनिया और उनका बचपन	मोईनुद्दीन खान	78

विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का संवेगात्मक बुद्धि और उपलब्धि अभिप्रेरण के साथ संबंध	निशा मिश्रा पूनम शर्मा	91
<b>पुस्तक समीक्षा</b>		
शिक्षा और जटिल होते समाज के विमर्शों की पड़ताल शिक्षा और आधुनिकता—कुछ समाजशास्त्रीय नज़रिए—अमन मदान	ऋषभ कुमार मिश्र समरजीत यादव	106

## संपादकीय

आज भले ही तकनीकी क्रांति के कारण अध्ययन सामग्री डिजिटल हो गई है, परंतु अध्ययन सामग्री का यह डिजिटल संस्करण मौलिक पुस्तकों का स्थान कभी भी नहीं ले सकता है। पुस्तकों का अपना संसार है, जो पाठक को पढ़ने का आनंद एवं रुचि प्रदान करता है। पुस्तकें ही वह साधन हैं जो ज्ञान एवं संस्कृति को पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ाने तथा संरक्षण प्रदान करने में मदद करती हैं। मनुष्य की औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा तथा जीवन मूल्यों के विकास में पुस्तकों का प्रमुख स्थान होता है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए यूनेस्को द्वारा 1995 में प्रतिवर्ष 23 अप्रैल को विश्व पुस्तक एवं कॉपीराइट दिवस मनाने का संकल्प लिया गया। इसी संकल्प के साथ, *भारतीय आधुनिक शिक्षा* का यह अंक भी पाठकों को पढ़ने का आनंद लेने और पढ़ने की कला को बढ़ावा देने में योगदान देगा।

इस अंक की शुरुआत 'शिक्षा का आशय' नामक लेख से की गई है, जिसमें वैदिककालीन शिक्षा, अंग्रेजी उपनिवेश काल अथवा पाश्चात्य ज्ञान की शिक्षा तथा आज की बाज़ारी व उपभोग प्रधान शिक्षा पर विमर्श प्रस्तुत किया गया है। साथ ही इसमें 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसी उदार और समावेशी मानसिकता को बताने वाले नवाचारों पर जोर दिया गया है तथा शैक्षिक विचारों, आदर्शों, मूल्यों आदि पर गहन चिंतन एवं व्यापक जन कल्याणकारी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है।

आज के पाश्चात्य ज्ञान तथा बाज़ारी शिक्षा में 'भारतीयता' के मूल्यों पर केंद्रित शिक्षा पर आधारित लेख 'दोराहे पर है शिक्षा' में बताया गया

है कि हमारी शिक्षा व्यवस्था में 'भारतीयता' का पुट होना अनिवार्य है। इस प्रकार इस लेख में शिक्षा से जुड़े भारतीयता के समस्त सरोकारों को समझाने का प्रयास किया गया है।

'समुदाय शिक्षण प्रतिमान—शिक्षक शिक्षा में एक श्रेष्ठ व्यवहार' नामक लेख में परंपरागत पाठ की तुलना में समुदाय शिक्षण प्रतिमान की विशेषताएँ निर्दिष्ट की गई हैं। शिक्षा की उपादेयता सिद्ध करने तथा समाज की समस्याओं को हल करने में यह प्रतिमान महत्वपूर्ण हो सकता है। शांति शिक्षा, शांति मूल्यों और कौशलों का मानव जगत् तथा प्रकृति के बीच सामंजस्य बिठाने का कार्य करती है। इसी पर आधारित लेख 'विद्यालयी शिक्षा में शांति शिक्षा' दिया गया है।

'गतिविधि आधारित विज्ञान शिक्षण आवश्यक क्यों?' नामक शोध पत्र में बताया गया है कि गतिविधि आधारित विज्ञान शिक्षण, शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। गतिविधि आधारित विज्ञान शिक्षण में *हैंड्स ऑन* एवं *माइंड्स ऑन*, दोनों ही होते हैं अर्थात् प्रयोग करते समय विद्यार्थियों का शरीर एवं दिमाग दोनों सक्रिय होते हैं। इस शोध में शोधक ने मध्य प्रदेश के शहडोल ज़िले के विद्यालयों का अवलोकन एवं विद्यार्थियों से चर्चा कर यह पाया कि विद्यार्थियों को प्रयोग करके जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह स्थायी होता है। विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का मापन करने के लिए उपलब्धि परीक्षण या प्रश्न-पत्र का विश्वसनीय तथा वैध होना, आवश्यक गुण है। अतः विज्ञान विषय में 'विज्ञान उपलब्धि परीक्षण—निर्माण तथा मानकीकरण' नामक शोध पत्र में विज्ञान

उपलब्धि परीक्षण के निर्माण की प्रक्रिया तथा उसके मानकीकरण के चरणों को प्रस्तुत किया गया है।

वर्तमान समय में विश्व अधिक प्रतियोगी होता जा रहा है और इसी संदर्भ में प्रत्येक अभिभावक यह चाहता है कि उनके बच्चे सफलता के शीर्ष स्तर पर पहुँचे, परंतु उपलब्धि के उच्च स्तर की इच्छा, बच्चों, शिक्षकों, अभिभावकों तथा विद्यालय पर एक दबाव का निर्माण करती है। अतः बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि से संबंधित कारकों का अध्ययन करना और उन कारकों के प्रभाव को समझना बहुत आवश्यक हो गया है। इसी पर आधारित शोध पत्र 'विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का अभिभावकीय प्रोत्साहन एवं अध्ययन आदत के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन' दिया गया है, जिसके परिणामों के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि अभिभावकीय प्रोत्साहन एवं अध्ययन आदत, शैक्षिक उपलब्धि से सार्थक रूप से सह-संबंधित हैं।

संस्कृत आयोग (1956 एवं 2012) ने यह सिफ़ारिश की थी कि पारंपरिक संस्कृत ज्ञान को आधुनिक शिक्षा प्रणाली से जोड़ा जाए। इस बिंदु को ध्यान में रखकर लेख 'संस्कृत भाषा शिक्षण की एक नयी दृष्टि—निर्माणवाद' में 'पुरातन संस्कृत विद्या' एवं 'आधुनिक निर्माणवाद' के बीच एक सेतु का निर्माण करते हुए संस्कृत भाषा शिक्षण को एक नयी दृष्टि प्रदान करने का प्रयास किया गया है। वहीं, शिक्षकों द्वारा संस्कृत व्याकरण शिक्षण के अंतर्गत विद्यार्थियों में संस्कृत भाषा के संप्रत्ययों की समझ विकसित करने के लिए 'संप्रत्यय संप्राप्ति प्रतिमान द्वारा संस्कृत व्याकरण शिक्षण' नामक लेख दिया गया है।

'बच्चों की दुनिया और उनका बचपन' नामक लेख विद्यालयों में बच्चों पर पड़ने वाले दबावों, घरों के हालात, बच्चों की मनःस्थिति, शिक्षकों के रवैया व खुले अंदाज़ में बच्चों की विद्यालयी व घरेलू परवरिश पर एक दार्शनिक व मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। वर्तमान समय में सफलता उच्च स्तरीय जीवन का पर्याय बन गई है। आज हर व्यक्ति अपनी सफलता के लिए निरंतर प्रयास करता रहता है। शिक्षा जगत में हुए शोधों में यह पाया गया कि शैक्षिक उपलब्धि कई संज्ञानात्मक तथा गैर-संज्ञानात्मक कारकों द्वारा प्रभावित होती है। इसी पर आधारित शोध पत्र 'विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का संवेगात्मक बुद्धि और उपलब्धि अभिप्रेरण के साथ संबंध' दिया गया है। इस शोध में पाया गया कि विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का संवेगात्मक बुद्धि और उपलब्धि अभिप्रेरण के साथ सार्थक संबंध है। इस अंक के अंत में 'शिक्षा और जटिल होते समाज के विमर्शों की पड़ताल' पर एक पुस्तक समीक्षा दी गई है, जो अमन मदान द्वारा रचित पुस्तक *शिक्षा और आधुनिकता—कुछ समाजशास्त्रीय नज़रिए* पर आधारित है।

आप सभी की प्रतिक्रियाओं की हमें सदैव प्रतीक्षा रहती है। आप हमें लिखें कि यह अंक आपको कैसा लगा। साथ ही, आशा करते हैं कि आप हमें अपने मौलिक तथा प्रभावी लेख, शोध पत्र, आलोचनात्मक समीक्षाएँ, श्रेष्ठ अभ्यास (Best Practices), पुस्तक समीक्षाएँ, नवाचार एवं प्रयोग, क्षेत्र अनुभव (Field Experiences) आदि प्रकाशन हेतु आगे दिए गए पते पर भेजेंगे।

# शिक्षा का आशय

गिरीश्वर मिश्र\*

व्यक्ति और समाज के निर्माण में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। देश-काल में बदलाव के साथ शिक्षा की भूमिका और स्वरूप में अनेक परिवर्तन होते रहे हैं। इन परिवर्तनों के बावजूद यह माना जा सकता है कि शिक्षा की पूरी संरचना और प्रक्रिया कुछ सार्वभौमिक मूल्यों के प्रति समर्पित है। जिसे हमने वैदिक काल से ही पाया एवं स्वीकारा है। वैदिक काल में शिक्षा को विद्या के रूप में अर्थात् 'सा विद्या या विमुक्तये' के रूप में अपनाया गया। धीरे-धीरे वैदिककालीन शिक्षा या कहें विद्या परंपरा दुर्बल होती गई और अंग्रेजी उपनिवेश काल तक आते-आते शिक्षा का कायापलट हो गया। जिसमें पाश्चात्य ज्ञान की श्रेष्ठता को स्थापित किया गया। इस कारण हमने अपनी प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली को खोया तथा अब शिक्षा बाजारी व उपभोग प्रधान हो गई। अब हमें कुछ नवाचारों की आवश्यकता है ताकि शिक्षा को प्रासंगिक बनाया जा सके। ये नवाचार व्यक्ति और समाज के जीवन के लिए प्रासंगिक होने चाहिए। जो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसी उदार और समावेशी मानसिकता को बताते हों। इस लेख में इन्हीं शैक्षिक विचारों, आदर्शों, मूल्यों आदि पर गहन चिंतन एवं व्यापक जन कल्याणकारी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है।

व्यक्ति और समाज के निर्माण में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यदि मानव संस्कृति की विकास यात्रा पर दृष्टिपात करें तो यही पाएँगे कि व्यक्ति और समुदाय, दोनों ही स्तरों पर वांछित लक्ष्यों को पाने के लिए सभी सभ्य समाजों में शिक्षा की संस्था की संकल्पना की गई। देश-काल में बदलाव के साथ शिक्षा की भूमिका और स्वरूप में अनेक परिवर्तन होते रहे हैं। शिक्षा के उद्देश्यों, विषय-वस्तु, माध्यम, अध्यापन और शिक्षकों की तैयारी आदि में भी इन परिवर्तनों का अवलोकन किया जा सकता है। सारी विविधताओं के बावजूद यह मानना उचित जान

पड़ता है कि शिक्षा की पूरी संरचना और प्रक्रिया कुछ सार्वभौमिक मूल्यों के प्रति समर्पित है। भारतीय संदर्भ में 'सा विद्या या विमुक्तये' और 'ऋते ज्ञानान् मुक्ति' कह कर हमारे शिक्षा या विद्यार्जन को एक मुक्तिदायी उपक्रम माना गया है। यह मुक्ति उन विभिन्न प्रकार के क्लेशों या तापों से मुक्ति को बताती है जिनसे मनुष्य पीड़ित रहता है। यह मुक्ति बहुआयामी है। यह परम तत्त्व से एकाकार होने की बाधाओं से मुक्ति है, 'मैं-अन्य' के भेद से मुक्ति है, भौतिकतावाद और इससे उपजने वाले अन्यान्य विकारों से मुक्ति है। यह जरूर कहा गया कि इस

\* कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र - 442001

(नोट—पंडित सुन्दर लाल शर्मा छतीसगढ़ मुक्त विश्वविद्यालय बिलासपुर के तीसरे दीक्षांत समारोह के अवसर पर प्रस्तुत व्याख्यान का संशोधित एवं संपादित रूप)

मुक्ति की सिद्धि धर्मानुकूल पुरुषार्थ की साधना से ही संभव है —

*अजरामरवत्प्राज्ञः विद्यामर्थं च चिंतयेत्*

*गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्।*

अर्थात् मनुष्य को स्वयं को अजर (बृद्धत्वरहित अर्थात् चिर युवा) और अमर मानते हुए विद्या और अर्थ की चिंता करनी चाहिए तथा मृत्यु अपने हाथ से केश पकड़े हुए है यह मानकर धर्म का आचरण करना चाहिए।

विद्या की महिमा का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि, एक सुपात्र के लिए वह 'कल्पलता' की तरह सब कुछ सिद्ध कर देती है। परंतु यह भी कहा गया है कि वास्तविक ज्ञानी उसी को कहते हैं जो मात्र पुस्तकीय ज्ञान नहीं रखता। उसे कार्य-क्षम भी होना चाहिए— 'यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्'। शिक्षा की प्रक्रिया विद्या उपलब्ध कराने वाली साधना है जो अन्य साधनाओं का मार्ग भी प्रशस्त करती है। परंतु उसके लिए पात्रता आवश्यक है। हम बचपन से पढ़ते आए हैं —

*विद्या ददाति विनयं विनयाद याति पात्रताम् ।*

*पात्रत्वात् धनमाप्नोति धनाद् धर्मं ततः सुखम् ॥*

अर्थात् ज्ञान या विद्या की प्राप्ति विनय से होती है, विनय से पात्रता मिलती है, पात्रता से धन की पात्रता होती है, धन से धर्म का आचरण किया जाता है और फिर उस आचरण से सुख मिलता है। यदि शिक्षा, सुख का साधन है तो स्वाभाविक है कि वह सत-असत विवेक का विकास करे जो विभिन्न प्रकार के 'क्लेशों' से निपटने में हमारी मदद करे। वास्तविक शिक्षा तनाव, अवसाद, घृणा और हिंसा जैसे विकारों को दूर करती है।

चूँकि मनुष्य केवल भौतिक शरीर वाला पशु मात्र नहीं है, उसमें मानस भी है, आत्मा भी है इसलिए मात्र भौतिक सुख पाना ही पर्याप्त नहीं है। तैत्तिरीयोपनिषद् के अनुसार, मनुष्य पंचकोशात्मक संरचना है जिसमें अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, विज्ञानमय कोश, मनोमय कोश और आनंदमय कोश सम्मिलित हैं। यह भी कहा गया है कि वास्तविक स्व या आत्मन इनसे भी परे हैं। तात्पर्य यह है कि हम शरीर मात्र नहीं हैं, हमारा आध्यात्मिक स्वरूप भी है। हम वस्तुतः चैतन्य स्वरूप हैं। इसकी अनुभूति सरल नहीं है, क्योंकि सत्य का मुख चमकीले आवरण से ढका रहता है। तभी निर्देश दिया गया, 'आत्मानं विद्धि', अपने को जानो। इस व्यापक आत्मबोध के अनुरूप भारतीय ज्ञान परंपरा में परा और अपरा, दोनों ही तरह की विद्याओं के साथ सर्वांगीण शिक्षा की संकल्पना की गई थी। कठोपनिषद् में नचिकेता यही जानने की इच्छा करता है। कालांतर में भी यह परंपरा चलती रही। बुद्ध, महावीर और वेदांत की परंपरा में शंकर, रामानुज, वल्लभ आदि ने इन प्रश्नों पर गंभीर विचार किया। देश के विभिन्न भागों में संतों और भक्तों ने भी भिन्न-भिन्न शैली में मनुष्य के व्यापक अस्तित्व की व्याख्या की। आधुनिक काल में महर्षि रमण और श्री अरविंद जैसे साधकों ने यह कार्य आगे बढ़ाया।

धीरे-धीरे यह परंपरा दुर्बल होती गई। अंग्रेजी उपनिवेश काल तक आते-आते शिक्षा का जो कायापलट हुआ, उसने शिक्षा और उसके द्वारा भारतीय मानस की बनावट और बुनावट को गहनता और व्यापकता के साथ प्रभावित किया। उसने शिक्षा के अमृत वृक्ष को उखाड़ फेंका और ज्ञान की



गवेषणा करने वाले जिज्ञासु की जगह अर्थ-पिपासु की परंपरा स्थापित की। समृद्ध भारतीय ज्ञान परंपरा को निरस्त करते हुए भारतीय चेतना में पाश्चात्य ज्ञान की श्रेष्ठता को स्थापित किया गया। उपेक्षा और अनुपयोग के कारण वह सब अधिकांश भारतीयों के लिए अपरिचित और अप्रासंगिक होता गया। उसके प्रति दुर्भाव भी पनपने लगा और उसे तिरस्कृत किया जाने लगा। औपनिवेशिक प्रभाव में हमारा मानस बना कि अंग्रेजी भाषा और पश्चिमी शिक्षा प्रणाली को अपनाकर हम सर्वोत्कृष्ट बन जाएंगे पर हुआ इसके विपरीत। जो भारत नालंदा, तक्षशिला, विक्रमशिला और ओदंतपुरी जैसे विश्वविद्यालयों के लिए प्राचीन काल में विश्व प्रसिद्ध था और विदेश से लोग पढ़ने आते थे, वह शिक्षा की दृष्टि से निचले स्तर पर चला गया। अंग्रेजी और अंग्रेजियत ने हम पर जबरदस्त अधिकार जमा लिया। आज स्थिति यह है कि अस्पष्टता के कारण सांस्कृतिक क्षति हो रही है और उसके चलते अधिकांश भारतीय बोलने और सोचने को लेकर विभाजित व्यक्तित्व वाले होते जा रहे हैं। हमने जिस बाहरी आवरण को अपनाने की कोशिश की, उससे तालमेल नहीं बैठा पाए। इसके चलते जो मौलिक रूप से हमारा देशज था, उससे भी संबंध कमजोर होता गया। इसका सम्मिलित दुष्परिणाम यह हुआ कि भारतीयों पर अंग्रेजी के साथ अंग्रेजियत हावी होने लगी। हम सब धर्म, आयुर्वेद, भाषा, पशु, पक्षी, प्रतिमा, पुरातत्व, कला, राजनीति, अर्थशास्त्र, स्थापत्य आदि विविध क्षेत्रों में भारतीय संस्कृति के अवदान से भी अपरिचित हो रहे हैं। हम सांस्कृतिक विस्मृति की ओर तेजी से बढ़ रहे हैं। हमने ऐसी विश्व दृष्टि और जीवन शैली को स्वीकार किया

जिसमें सांस्कृतिक साहचर्य का अभाव था। अपनी सांस्कृतिक विरासत से कटकर हमने ऐसा मार्ग चुना जो श्रेयस्कर न था। शिक्षा अर्थकरी व्यवस्था के अधीन होती गई। बाज़ार और उपभोग ही जीवन में प्रधान होते गए।

हमारे यहाँ के कुछ लोकप्रिय आदर्श विचारणीय हैं—‘तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः’ अर्थात् त्याग के साथ भोग करना चाहिए, ‘सर्वे भवन्तु सुखिनः’ अर्थात् सभी के सुख की कामना करनी चाहिए और ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ अर्थात् पूरी धरती ही कुटुम्ब जैसी है। ये सभी उदार और समावेशी मानसिकता को बताते हैं। यह समाज केवल बाज़ार और भोग के सहारे रहने की दिशा में आगे बढ़ रहा है। यह सांस्कृतिक असातत्य और विसंगति को जन्म देता है। फलतः आज हम सब दैनंदिन जीवन में कई समस्याओं के साथ उलझ रहे हैं। इन्हें पश्चिम के ज्ञान के सहारे भारतीय समाज और इसकी अस्मिताओं की समस्याओं या पश्चिम जैसे बदलाव के रूप में पहचाना गया। जबकि यह वस्तुतः ‘विभ्रम में पल रहे समाज’ की सांस्कृतिक विस्मृति के परिणामस्वरूप पश्चिम जैसे बनावटी समाज की ओर बढ़ने की परिणति थी। इस प्रवृत्ति के प्रति हम सचेत हुए और समय-समय पर अपने यहाँ प्रचलित शिक्षा की अनेक दुष्ट प्रवृत्तियों की ओर विभिन्न शिक्षा आयोगों और समितियों ने ध्यान आकृष्ट किया, परंतु हमारे मोह और तज्जनित आवरण में कुछ भी स्पष्ट नहीं हो रहा है। फलतः ‘गलत है’ यह जानकर भी भ्रांतिवश और साहस न होने के फलस्वरूप शिक्षा में सार्थक परिवर्तन नहीं हो सका है। इसके स्थान पर राजनैतिक पसंद और नापसंद के अनुसार शिक्षा में यथासमय विविध

प्रकार के परिवर्तन और प्रयोग किए जाते रहे। उसके समर्थन में तर्क-कुतर्क गढ़े जाते रहे। आज शिक्षा भाराक्रांत-सी होती जा रही है और उसमें सामर्थ्य की दृष्टि से सार्थक बदलाव नहीं आ सका है।

आज भारतीय शिक्षा में स्तर-भेद, क्षेत्र-भेद और गुणात्मक-भेद जिस तरह बढ़े हैं और व्यावसायिकता जिस तरह से उसे प्रभावित कर रही है, उनके फलस्वरूप समतामूलक, संस्कारपरक शिक्षा दुर्बल हुई है। इसके लिए नवाचारों की आवश्यकता है ताकि शिक्षा को प्रासंगिक बनाया जा सके। इन नवाचारों को अपनाने समय यह ध्यान रखना होगा कि क्या ये हमारी संस्कृति और संदर्भ के सापेक्ष हैं? कहीं ऐसा तो नहीं की नवाचारों के नाम पर पुनः 'दूसरे' का अंधानुकरण किया जा रहा है। हमारे नवाचारों के मूल में शिक्षा की उसी भूमिका को साधने का लक्ष्य होना चाहिए जहाँ वह 'मुक्ति' 'विवेक' और 'सहअस्तित्व' जैसे मूल्यों से अनुप्राणित है, जहाँ वह व्यक्तिनिष्ठता के मोहपाश में बाँधने के बदले प्रकृति और समाज से उसके रिश्ते को मजबूत करने का बोध पैदा कर रही है।

ऐसे नवाचारों के संदर्भ में पहली शर्त है कि वे व्यक्ति और समाज के जीवन के लिए प्रासंगिक हों। क्योंकि समाज या संस्कृति से शिक्षा का पोषण होता है और उसके उपयोग की दृष्टि से आज शिक्षा एक दुःस्वप्न जैसी होती जा रही है। शिक्षा संस्थाओं से ढलकर विद्यार्थी एक बड़ी यांत्रिक व्यवस्था के उपकरण का रूप लेने लगता है। प्रतिस्पर्धा की दुनिया में उसका उद्देश्य सफलता, उपलब्धि और भौतिक प्रगति के मार्ग पर निरंतर आगे बढ़ने तक चूकता जा रहा है। इस दौड़ में अधिकाधिक

एकरूपता या 'यूनिफॉर्मिटी' बरती जा रही है जो शिक्षार्थी के मानस को सीमित और संकुचित बनाती जाती है। प्रचलित शिक्षा मनुष्य को स्वचालित रोबोट बनाने पर जोर देती है। इस शिक्षा से निकलने वाले होनहार युवा जिस सीढ़ी के सहारे चढ़कर ऊपर पहुँचते हैं, उस सीढ़ी से बेझिझक अलग हो जाते हैं। वे उस भूमि से बेझिझक अलग हो जाते हैं, जिसने उन्हें जीवन प्रदान किया। आज शिक्षा, सांस्कृतिक विचार, विश्वास, सहयोग, सहनशीलता आदि की कीमत पर दी जा रही है। ये वे हैं जो ऊर्जा के केंद्र हैं और जिन्हें किसी भी दिशा में मोड़ा जा सकता है। इसमें उनकी निजी लाभ वाली तीव्र महत्वाकांक्षा और वैश्विक नागरिक होने के लिए उतावलापन प्रमुख हैं। उनमें सामाजिक सृजनात्मकता और सामाजिक सकारात्मकता दुर्लभ होती जा रही है। ऐसी स्थिति में हमारे नवाचार और विकल्प अंधकारमय समाज की ओर बढ़ने से रोकने वाले होने चाहिए। हमें ऐसे विकल्पों को प्रतिष्ठित और प्रासंगिक मानने का साहस भी करना होगा।

भारत में पहले कई तरह के विद्यालय चलते रहे हैं। यहाँ प्राचीन काल में गुरुकुल, पाठशाला, अग्रहार और मदरसा मौजूद थे और अंग्रेज अधिकारी जब यहाँ पहुँचे तो यहाँ की स्थिति देखकर दंग रह गए। उन्होंने जो रपटें लिखीं, वे आश्चर्यजनक रूप से प्रारंभिक शिक्षा की अच्छी स्थिति प्रदर्शित करती हैं। शिक्षा की संस्था समाज और संस्कृति से जुड़ी थी। शिक्षण पद्धति में सामुदायिकता का भाव विद्यमान था। शिक्षा के संस्थानों का समाज से गहरा संबंध था। इन्हीं विशेषताओं को महात्मा गांधी ने अंग्रेजी शिक्षा का विरोध करते हुए रेखांकित किया था

और बाद में चलकर धर्मपाल जी ने ऐतिहासिक विश्लेषण द्वारा इसके प्रमाण दिए। इन्हीं विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए गांधीजी ने 'नई तालीम' और बुनियादी शिक्षा का विचार दिया। इसमें शरीर, हाथ, बुद्धि सबका संतुलन अभीष्ट था। उन्होंने इस उद्यम के लिए स्थानीय संसाधन के उपयोग का भी प्रस्ताव दिया। इसमें निरी बौद्धिकता पर बल न देकर सर्वांगीण विकास पर ध्यान दिया गया। बापू की मानें तो शिक्षा, शरीर, मन, आत्मा, सभी विचार के केंद्र में हैं।

शिक्षा मनुष्य को स्वावलंबन, देशभक्ति, आत्म-संपन्नता और संयम सिखाती है। इन्हीं मूल्यों पर आधारित शिक्षा पर अनेक प्रयोग गुरुदेव रबींद्रनाथ ने शांतिनिकेतन में किए। श्री अरबिंद ने शिक्षा को मानव के विकास की उच्चतम अवस्था तक पहुँचाने के साधन के रूप में बताया था। रुक्मिणी देवी अरंडेल ने कला क्षेत्र, एनी बेसेंट तथा जे. कृष्णमूर्ति ने भी प्रयास किए। गिजुभाई बंधेका ने अभिनव प्रयास किए। इन सब प्रयासों में जीवन कौशलों और कला पर भी जोर दिया गया, जिससे बच्चे को उसके आस-पास की दुनिया को अनुभव करने और जुड़ने का भी अवसर मिले। वह खुद को, प्रकृति को और समाज को जानने के लिए दूसरे के बताए ज्ञान पर निर्भर न रहकर खुद ज्ञान का अन्वेषी बने। ऐसे अन्वेषी ही सही अर्थों में, ज्ञान और आविष्कार के नए क्षितिज खोलने में समर्थ होते हैं। अन्यथा शिक्षा तो श्रमिक पैदा कर ही रही है। हमारी पद्धति में, जो केवल 'विलुप्त प्राय इतिहास' नहीं है, बल्कि जिसका वर्तमान भी है, समग्र व्यक्तित्व के उल्लास और विकास की परिकल्पना है। इसके

लिए सिर्फ पुस्तकीय ज्ञान पर्याप्त नहीं है। प्राचीन और नए हुनर, हस्तकलाएँ भी आनी चाहिए। इनका ज्ञान केवल धर्नाजन या उत्पादन मात्र के लिए नहीं है। ये हमें हमारी संस्कृति से जोड़ती हैं और खुद को खोजने, जीने और जानने का रास्ता दिखाती हैं।

वस्तुतः शिक्षा समाज के मानस का निर्माण करती है। वह मूर्त और अमूर्त, दोनों माध्यमों से मूल्य का संप्रेषण करती है। शिक्षा के परिसर में बच्चे को सहयोग, मित्रता, प्रेम, भाईचारा, ईमानदारी, पारस्परिक भरोसा और उपकार जैसे सद्गुणों को जानने-समझने का अवसर मिलता है। यदि उनके अनुभवों को व्यवस्थित नहीं किया गया तो घृणा और द्वेष भी पनप सकता है। यह कटु सत्य है कि आज हम जिस पाश्चात्य ज्ञान से अभिभूत हैं और जो पाश्चात्य शिक्षा प्रत्यारोपित की जा रही है, वह एक हद तक भारतीय मूल्यों को विस्थापित कर रही है। इससे विसंस्कृतीकरण और विमानवीकरण की प्रवृत्ति तेजी से बढ़ रही है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि आर्थिक संपन्नता से सांस्कृतिक विपन्नता की भरपाई कभी नहीं हो सकती। नैतिक मूल्यों का अभाव, तनाव, द्वंद्व, हिंसा, असहनशीलता तो किसी भी समाज में, किसी भी शर्त पर स्वीकार्य नहीं होने चाहिए।

निजीकरण के दौर में अब धीरे-धीरे शिक्षा एक खास तरह का व्यापार बनती जा रही है। विद्यालय के साथ समाज का रिश्ता कमजोर होता जा रहा है। इनके संचालन में जन भागीदारी बहुत कम है। प्रक्रिया के स्तर पर शिक्षक और सहपाठी के साथ विद्यालय के सहयोग की समस्या बढ़ रही है। पाठ्यचर्या और पाठ्यपुस्तक लोगों के मानस को अनुबंधित कर रहे हैं, आधुनिकता और यहाँ की ज्ञान परंपरा के बीच

सामंजस्य नहीं बन पाया है। संचार तथा सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्रगति हो रही है, पर इन सबके बीच आदमी खो गया है। अब लोग बुद्ध, महावीर, ईसा, महात्मा गांधी के आदर्श भूल रहे हैं। हम किधर जा रहे हैं? यह विचारणीय है। भौतिकता ही यथार्थ है, यह मिथक तोड़ना होगा। यंत्र मानसिकता का रोग छुड़ाना होगा।

शिक्षा में सामाजिक और ब्रह्मांडीय चेतना ही आधुनिक आत्म-केंद्रित उपभोक्तावाद का समाधान दे सकती है। अहम् का प्रकृति पर विजय की जगह, प्रकृति और समाज के बीच सहज संबंध स्थापित करने से ही स्वराज, स्वदेशी और सर्वोदय जैसे व्यापक विचार जीवित होंगे। शांति की संस्कृति का विकास नैतिक अनुशासन से ही आ सकेगा। तभी बच्चे में श्रेष्ठ का आविष्कार और स्वावलंबी जीवन की साध पनप सकेगी। तभी पूर्ण सामाजिक विकास और धार्मिक समानता भी आएगी।

यह स्मरण रखना होगा कि मनुष्य के रूप में जन्म एक बहुमूल्य उपलब्धि है। इसकी असाधारण क्षमता का पूरा लाभ उठाना चाहिए और अन्य प्राणियों के हित में उपयोग करना चाहिए। अन्यथा मनुष्य जन्म व्यर्थ हो जाता है। यह जन्म बड़ी सुविधा और अवसर देने वाला होता है। पशुओं को धर्म ज्ञान नहीं होता। फलतः उनमें अविद्या का क्लेश बहुत अधिक होता है। धर्म के अभ्यास की क्षमता सभी में होती है। उसे ध्यान में रखकर मनुष्य को अपनी चरम क्षमता का अन्वेषण करना चाहिए। मनुष्य में रचना और ध्वंस, दोनों ही तरह की क्षमताएँ विद्यमान होती हैं। दोनों ही दृष्टियों से मानव-जन्म की क्षमता अभूतपूर्व है। इस जीवन को व्यर्थ करना ठीक नहीं है। इसकी क्षमता का

सदुपयोग करना चाहिए। आखिरकार दया, शांति, परोपकार, अहिंसा, सहयोग, दान आदि व्यवहार ही तो हमें पशु से अलग मनुष्य बनाते हैं। भ्रमवश हम क्रूरता, प्रभुत्व, आत्मभाव, आत्मश्लाघा आदि के चक्र में फँस जाते हैं। ये तो मनुष्यों के लिए वर्जित हैं। आज आये दिन नैतिक मूल्यों के प्रश्न खड़े हो रहे हैं। हम यह भूल जाते हैं कि त्याग ही नैतिकता की आधारशिला है। नैतिकता की पुकार है — ‘निःस्व’ (स्व नहीं) होना। नैतिक नियमों का आदर्श आत्म-त्याग ही है। अहंता का भाव समाप्त करना होगा।

उपयोगितावादी विचारधारा स्वयं के सुख और आनंद की प्राप्ति को ही परम लक्ष्य मानती है। सांसारिकता भौतिकवादी बनाती है जिसमें सब कुछ यहीं और अभी होना अभीष्ट होता है। परंतु तात्कालिकता से ही बात नहीं बनती है। मनुष्यता प्रकृति से ऊपर उठने में है। हम बाहरी प्रकृति को तो जीत लेते हैं, अभ्यांतर प्रकृति भी जीतनी होती है। मनोवेग, भावनाओं और इच्छाओं पर नियंत्रण अधिक जटिल, परंतु अधिक महत्वशाली है। इंद्रिय-जनित सुख में आनंद की अनुभूति निम्नतम स्तर की मानी गई है। कला, दर्शन तथा विज्ञान आदि में आनंद की अनुभूति उससे ऊपर है। आध्यात्मिक स्तर का आनंद ही सर्वोच्च होता है। आध्यात्मिक आदर्शों पर चलने से मिलने वाली शक्ति अपरिमित होती है। मानव मन के विकास के साथ आध्यात्मिक विकास भी होता है। इसीलिए भारत की ज्ञान परंपरा में लौकिक और पारलौकिक या कहें कि भौतिक जगत और आध्यात्मिक जगत, दोनों का ज्ञान जरूरी माना गया था। यहाँ पर ‘परा’ और ‘अपरा’, दोनों ही तरह

की विद्याओं की साधना पर बल दिया गया। इंद्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान ही ज्ञान की पराकाष्ठा नहीं है। हमारे मानस की बनावट ही ऐसी है, वह इंद्रियानुभविक ज्ञान का अतिक्रमण कर जाता है।

हम सब अपने आस-पास की दुनिया के साथ इतने आसक्त होते हैं कि उसे छोड़ना नहीं चाहते। हमारी इंद्रियों में ही सुख-दुख का आदि और अंत मौजूद होता है। पर कभी-न-कभी मन में यह सवाल खड़ा होता है कि क्या यह दुनिया सत्य है? सबकी अंतिम स्थिति मृत्यु ही है। धन, सौंदर्य, शक्ति सब कुछ अंततः समाप्त होता है। राजा हो या रंक, विद्वान हो या मूर्ख, सभी मृत्यु को प्राप्त करते हैं। क्या मृत्यु ही जीवन की अंतिम परिणति है? यदि ऐसा है तो आसक्ति क्यों? आसक्ति का त्याग नहीं कर पाते, यही माया है। यह प्रश्न सदा से उठता आया है। महाभारत में युधिष्ठिर से यही प्रश्न यक्ष का था — सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है? युधिष्ठिर ने बताया कि प्रतिदिन लोग मर रहे हैं, फिर भी जो जीवित हैं, वे यह समझते हैं कि वे कभी नहीं मरेंगे। वस्तुतः सब कुछ का सापेक्ष अस्तित्व है। अपरिवर्तनीय नित्य सत्ता नहीं है। पर वर्तमान में सत-असत भिन्न-भिन्न हैं। यह सत और असत का मिश्रण है। सुख-दुख दोनों होते हैं। वास्तव में, सुखोत्पादक शक्ति जहाँ होती है, वहीं पर दुख का भी कारण रहता है। यह संसार सुख-दुख, दोनों ही तरह की घटनाओं का मिश्रण है। न मृत्युहीन जीवन होता है, न दुखहीन सुख। सुख की कामना सबकी होती है। सुख की लालसा में मनुष्य सर्वत्र भ्रमण करता है और इंद्रियों के पीछे भागता है। इंद्रियों में किसी को भी सुख नहीं मिलता। काम्य वस्तुओं के उपभोग से कभी वासना की निवृत्ति नहीं होती, वरन्

घृताहुति के द्वारा अग्नि के समान वह और भी बढ़ जाती है—

न जातु कामानामुपभोगेन शाम्यति  
हविशा कृष्णवर्त्मैव भूय एवाभिवर्धते ।

सुख तो नित्य आत्मा में ही मिलता है। अतएव सुख प्राप्ति के लिए आत्मा पर ध्यान देना चाहिए। सब कुछ सत्य प्रतिभासित होता है, परंतु आयु बढ़ने के साथ वृद्ध होने पर वासनापूर्ति नहीं हो पाती है। दुनिया की प्रत्येक वस्तु का जीवन सीमित अवधि के लिए होता है। धन, संपत्ति, सामर्थ्य और गरीबी ही नहीं जीवन भी क्षण स्थायी है। वास्तविक समस्या अज्ञान है। हम अनंत होकर भी अपने को संत मानते हैं। अविनाशी, नित्य और शुद्ध होने पर भी हम अपने को छोटी देह मात्र मान बैठते हैं। अपने को देह मानते ही उसे सुंदर बनाने में जुट जाते हैं। तभी दुख का आरंभ होता है। हम जैसे होते हैं, वैसे ही जगत को भी देखते हैं। जगत के उपकार के लिए उस पर दोषारोपण करना छोड़ना होगा। दुर्बलता और अवसाद छोड़कर अच्छा चिंतन करना चाहिए। ‘उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत’ अर्थात् दूर हो लक्ष्य, परंतु उठकर, जगकर, श्रेष्ठ से ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। हमें अपने में विवेक, अभ्यास, स्वाध्याय, देव यज्ञ, पितृ यज्ञ, मनुष्य यज्ञ, भूत यज्ञ, सत्य, आर्जव, निष्कपट भाव या सरलता, दया, अहिंसा, दान, अनवसाद हताश न होना, प्रसन्नता का भाव विकसित करना चाहिए। हमें संकीर्णताओं को छोड़ व्यापक कल्याणकारिणी शक्ति के साथ कार्य करना चाहिए। उदार, व्यापक और असीम की ओर उन्मुख मानव धर्म की भावना अपेक्षित है। ऐसा धर्म जो परस्पर बंधुत्व, स्नेह और आदर के भाव पर आधृत हो, कल्याणकारी हो।

## दोराहे पर है शिक्षा

पवन सिन्हा\*

---

हमारी शिक्षा व्यवस्था में 'भारतीयता' का पुट होना अनिवार्य है, क्योंकि जिन बच्चों के लिए हम शिक्षा का उपक्रम कर रहे हैं, वे बच्चे भारतीय हैं, भारतीय परिवेश में रहते हैं, भारतीय समाज का अभिन्न हिस्सा हैं। हम यह जानते हैं कि कोई भी शिक्षा अपने समाज से जुड़ी हुई होती है। चिंतन का मुद्दा यह भी है कि भारत को समझने के लिए भारतीय दृष्टि का होना ज़रूरी है। विद्यालयी शिक्षा और शिक्षक शिक्षा में विदेशी तर्ज पर शिक्षण-अधिगम उपक्रमों को लागू करना उचित नहीं है, क्योंकि वे उपक्रम भारतीय समाज की जड़ों से जुड़े हुए नहीं हैं। भारतीय बच्चे को, उसके व्यक्तित्व को समझने के लिए भारतीय सिद्धांतों को भी समझना होगा। दरअसल जो जीवन का सत्य है, वही शिक्षा का भी सत्य है, क्योंकि शिक्षा जीवन के साथ ही जुड़ी हुई है। शिक्षा का उद्देश्य ही है जीवन को सार्थक और बेहतर तरीके से जीना। इस प्रकार इस लेख में शिक्षा से जुड़े भारतीयता के समस्त सरोकारों को समझाने का प्रयास किया गया है।

---

स्वतंत्रता के पश्चात् हमारे देश में शिक्षा कि गुणवत्ता में सुधार हेतु अनेक प्रयास किए गए। उसी कड़ी में राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 (1.9) के वाक्य, "मौजूदा हालात ने शिक्षा को एक दोराहे पर ला खड़ा किया है। अब न तो अब तक होते आये सामान्य विस्तार से और न ही सुधार के वर्तमान तौर-तरीकों या रफ़्तार से काम चल सकेगा।" को पढ़ा और गुना, मुझे यही समझ आया कि सच में शिक्षा आज भी दोराहे पर खड़ी है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 का यह कथन आज भी बेहद प्रासंगिक है...। स्थितियों से जूझने के लिए शिक्षा का जो ढाँचा सोचा गया, वह 'ढाँचा' तो आज भी मौजूद है, लेकिन उसकी 'आत्मा' कहीं खो-सी गई है। अगर मैं गहराई से पैसे

विश्लेषण के लेंस से चीजों को समझने की कोशिश करूँ तो यही समझ आता है कि आज भी वही समस्या सामने खड़ी है जो आज से लगभग 32 साल पहले खड़ी थी। हालाँकि शिक्षा के संदर्भ में अनेक सकारात्मक परिवर्तन भी आए हैं, लेकिन शिक्षा संबंधी व्यवस्था के जिन पहलुओं में मूलतः परिवर्तन को और अधिक पुख्ता किया जाना था, वह परिवर्तन अभी भी पुख्ता होने की प्रक्रिया में हैं। दरअसल बात यह है कि परिस्थितियाँ भी बदल गईं, चुनौतियाँ भी बदल गईं, 'तनाव और दबाव' भी बदल गए, लेकिन बदलते ज़माने की बदलती हवाओं के हिसाब से शिक्षा पूरी तरह से बदल नहीं पा रही। वह आज भी केवल '10+2+3 का ढाँचा' लिए खड़ी है। ऐसा

---

\* एसोसिएट प्रोफ़ेसर, मोतीलाल नेहरू कॉलेज, साउथ कैंपस, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली – 110 021

नहीं है कि शिक्षा के बारे में बहुत गंभीरता से सोचा ही नहीं गया। नीति-निर्माण के लिए परस्पर गहन विचार-विमर्श होता है, तब जाकर एक नीति अपने अंतिम रूप में आकार पाती है। भारत जैसे विविधता वाले देश में नीति बनाना इतना सरल भी नहीं है। विविधता के क्षेत्रों में भी विविधता है, यानी भाषा में विविधता, समाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों में विविधता, भौगोलिक स्थितियों में विविधता — इतनी विविधताओं को एक नीति के माध्यम से सहेज पाना थोड़ा कठिन अवश्य है, लेकिन असंभव नहीं।

शिक्षा से जुड़ी नीति के निर्माण में गहन विचार-विमर्श से तब लाभ मिलता है जब एक ‘समग्र दृष्टि’ (Vision) भी विद्यमान होती है। यह ‘समग्र दृष्टि’ सामाजिक-सांस्कृतिक सहित अनेक परिप्रेक्ष्यों को समग्रता में देखने से विकसित होती है। अतः यह आवश्यक है कि भारत की शिक्षा-नीति का निर्धारण करते समय ‘भारत’ को उसकी समग्रता में देख-समझ लिया जाए। एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि हमें उस प्रस्थान बिंदु से आगे भी जाना है जहाँ आज हम खड़े हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि वर्तमान और भविष्य को एक साथ, समग्रता में देखने की जरूरत है। ‘शिक्षा वर्तमान तथा भविष्य के निर्माण का अनुपम साधन है। इसी सिद्धांत को राष्ट्रीय शिक्षा नीति के निर्माण की धुरी माना जाता है’ (राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986:2.4)। यह सिद्धांत कारगर तो है, लेकिन उस समाज में असफल-सा लगता है जहाँ चिंता इस बात की है कि ‘हमार बिटवा इत्ता भर पढ़ लेई कि ऊकी नौकरिया लग जाई’ जहाँ शिक्षा को नौकरी से ही जोड़कर देखा जाता है और आगे आने वाली पीढ़ी की भी यही इच्छा रहती है कि हमारा बच्चा इतना पढ़-लिख जाए कि किसी

तरह से ‘सरकारी’ नौकरी में लग जाए। इस समाज की शिक्षा से जुड़ी यह अवधारणा एक स्तर पर गलत भी नहीं लगती, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपने भविष्य को सुरक्षित रखना चाहता है। इसमें आर्थिक सुरक्षा सबसे पहले है, आखिर ‘दो वक्त की रोटी का सवाल’ है। आर्थिक सुरक्षा के लिए एकमात्र उपाय ‘नौकरी’ इसलिए नज़र आता है, क्योंकि धीरे-धीरे खेत-खलिहान, अपने पैतृक व्यवसाय और श्रम-प्रधान कार्य समाप्त होते जा रहे हैं। ऐसा हो सकता है कि यह स्थिति कहीं कम हो और कहीं ज्यादा। लेकिन इतना तय है कि यह स्थिति अपनी उपस्थिति दर्ज कराती है। इस सिक्के का दूसरा पहलू यह है कि अब धीरे-धीरे ‘नौकरियाँ’ कम होती जा रही हैं। इनसानों की जगह मशीनें लेने लगी हैं, वह भी एक की जगह नहीं, बल्कि एक साथ कई लोगों की जगह लेती जा रही हैं। यह दुखद स्थिति है कि कागज़ पर शिक्षा न जाने ‘किस-किस का माध्यम है’, न जाने ‘क्या-क्या कर सकती/करती है’ लेकिन ज़िंदगी की किताब में उसकी कीमत बस ‘नौकरी’ तक ही सिमट कर रह गई है।

फ़रवरी, 1835 में मैकॉले ने भारतीयों के लिए जो शिक्षा का ढाँचा चुना या बना हम उसके जाल में आज भी कैद हैं। उसने हमारी भारतीय भाषाओं, हमारे भारतीय ज्ञान, परंपराओं को हीन बताकर अंग्रेज़ी भाषा और अंग्रेज़ी साहित्य को श्रेष्ठ बताया... शिक्षा का माध्यम भी अंग्रेज़ी ही रखा... और हमें यह मानना पड़ा। मैकॉले ने शिक्षा को अपनी ईस्ट इंडिया कंपनी के ‘मुलाज़िम’ तैयार करने का माध्यम बनाया। वह वास्तव में एक ऐसा वर्ग तैयार करना चाहता था जो अपनी रुचि, आचार-विचार और बुद्धि से अंग्रेज़ हो ताकि ईस्ट इंडिया कंपनी को क्लर्क मिल सकें।

मैकॉले ने अपने समाज और समय की ज़रूरत को ध्यान में रखकर ऐसी नीति बनाई थी। उस समय हम स्वतंत्र नहीं थे, मैकॉले के विरुद्ध आवाज़ उठाते तो संभवतः सुनी भी नहीं जाती। कुल मिलाकर स्थितियाँ प्रतिकूल थीं। लेकिन आज तो हम स्वतंत्र हैं। आज तो हम गलत बातों का विरोध कर ही सकते हैं, अपनी आवाज़ ऊँची कर सकते हैं। लेकिन गहराई से देखा-समझा जाए तो लगता है कि हम तो 'चुप' हैं और चुपचाप मैकॉले की तर्ज पर चले जा रहे हैं। शिक्षा को लेकर आज भी माहौल कुछ ऐसा ही है जो शिक्षा को महज़ नौकरी पाने के माध्यम के रूप में देखता है। यह भी लगता है कि 'खामोशी की संस्कृति' आज भी मौजूद है। हमने प्रायः अपनी ही भाषाओं में लिखे साहित्य को पढ़ना छोड़ दिया, क्योंकि भारतीय भाषाओं में लिखे साहित्य को पढ़ने वाले तथा उसमें लिखे हुए को स्वीकार करने वाले व्यक्ति आज की दुनिया में 'बहुत कम हैं जबकि अंग्रेज़ी में 'किताब' पढ़ने वाला, अंग्रेज़ी बोलने वाले व्यक्ति बहुत अधिक हैं। अंग्रेज़ी का वर्चस्व तब भी था और अंग्रेज़ी का वर्चस्व आज भी है। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक होगा कि भाषा सीखने-बोलने के रूप में अंग्रेज़ी से कोई बैर नहीं है, समस्या अंग्रेज़ी मानसिकता से है। आज भी हमने अंग्रेज़ी को भारतीय भाषाओं से उच्च स्थान दिया है। यही कारण है कि आज 'शिक्षा का अधिकार भी बहुत चतुराई से मातृभाषा को माध्यम बनाते-बनाते यह कह गया—'शिक्षा का माध्यम, जहाँ तक साध्य हो बालक की मातृभाषा में होगा'। जबकि हम यह स्वीकार करते हैं कि जीवन-जगत को लेकर बच्चे की तमाम अवधारणाएँ बच्चे की मातृभाषा में बनती

हैं। वह उसी भाषा में सहज महसूस करता है और उसी भाषा में सहज अभिव्यक्ति करता है।

अंग्रेज़ी भाषा, देश के हर बच्चे के परिवेश में समृद्ध रूप से मौजूद नहीं है और अगर अंग्रेज़ी को शिक्षा का माध्यम बनाने के लिए प्रावधान किया जाता है तो वह बच्चे के मस्तिष्क पर बोझ ही डालेगी, उससे कुछ भी हासिल होने वाला नहीं है। कई विश्वविद्यालय ऐसे हैं जहाँ कुछ पाठ्यक्रमों का अध्ययन केवल अंग्रेज़ी भाषा में ही होता है। वहाँ हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के लिए कोई स्थान शेष नहीं रह जाता। भारत का संविधान भी मातृभाषा में शिक्षा (प्राथमिक स्तर पर) उपलब्ध कराने का समर्थन करता है—'प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारी भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा और राष्ट्रपति किसी राज्य को ऐसे निर्देश दे सकेगा जो वह ऐसी सुविधाओं का उपबंध सुनिश्चित कराने के लिए आवश्यक या उचित समझता है'। [अनुच्छेद 350 क संविधान अधिनियम (सातवाँ संशोधन), 1956 की धारा 21 द्वारा अंतः स्थापित]। लेकिन मुद्दा यह है कि भारत का संविधान केवल भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों के बालकों को प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध कराने की बात करता है। क्या वास्तव में यह ज़रूरत सिर्फ़ और सिर्फ़ अल्पसंख्यकों की है, हर बच्चे की नहीं? और अगर है तो फिर यह भेदभाव क्यों? इतना ही नहीं, 1968 की शिक्षा नीति प्राथमिक स्तर पर पढ़ने-पढ़ाने का माध्यम मातृभाषा को ही स्वीकार करती है जिसे



राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 ने ज्यों-का-त्यों मान लिया था, लेकिन वास्तविकता यह है कि अंग्रेजी भाषा को ही माध्यम बनाने पर जोर दिया जा रहा है। यह जोर या दबाव अभिभावकों की ओर से अपेक्षाकृत अधिक है, क्योंकि उनका मानना है कि अंग्रेजी भाषा का ज्ञान और अंग्रेजी भाषा में व्यवहार 'नौकरी' दिलाता है। इस तरह से अंग्रेजी भाषा रोजगार की भाषा के रूप में उपस्थित है। लेकिन बच्चे की अवधारणाओं की भाषा, समझ की भाषा और अभिव्यक्ति की भाषा तो उसकी मातृभाषा है। इस संदर्भ में भी विचार किया जाना अपेक्षित है।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा राष्ट्रीय एकीकरण के लिए 'एक भारत श्रेष्ठ भारत' के अंतर्गत 'भाषा संगम-भाषिक विविधता का उत्सव' नामक कार्यक्रम वर्ष 2017 से प्रारंभ किया गया है। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य है — विद्यालयों और संस्थानों को भारतीय भाषाओं में बहुभाषिकता से परिचित कराना। यह कार्यक्रम भारत की भाषिक विविधता को संबोधित करने, संविधान की आठवीं अनुसूची में उल्लिखित भारतीय भाषाओं से बच्चों का परिचय कराने, भारतीय भाषाओं के प्रयोग को बढ़ावा देने, भाषिक सहिष्णुता और सम्मान को बढ़ावा देने के लिए प्रारंभ किया गया है। यह कार्यक्रम एक ओर भाषिक विविधताओं को सकारात्मक रूप में संबोधित करता है, वहीं दूसरी ओर राष्ट्रीय एकीकरण को बढ़ावा देता है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत जो गतिविधियाँ सुझाई गई हैं, वे प्रतिदिन बच्चों को अलग-अलग भाषाओं के शब्द, वाक्य और परस्पर वार्तालाप के असवर देती हैं। निस्संदेह यह प्रयास प्रशंसनीय है। इसके साथ ही बच्चों की मातृभाषाओं को कक्षा, विद्यालय और अध्ययन-अध्यापन में

पर्याप्त स्थान देने की आवश्यकता है। यह संभव है कि बच्चे की भाषा संविधान की आठवीं अनुसूची में न हो, लेकिन उसकी मातृभाषा सम्माननीय है। उसकी मातृभाषा में उसके विचार बनते हैं, विचारों की अभिव्यक्ति सहजता के साथ होती है तो इस ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिए।

भारतीय शिक्षा भारतीय समाज और भारतीय संस्कृति के ताने-बाने से बुनी हुई होनी चाहिए। यही कारण है कि *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005* (पृ. 36-37) स्पष्ट रूप से यह कहती है कि 'इसलिए स्थानीय चीजें एक स्वाभाविक अधिगम स्रोत हैं जिन्हें कक्षा कार्य संपादन के निर्णय लेते समय प्रधानता देनी चाहिए... स्थानीय परिवेश केवल भौतिक-प्राकृतिक नहीं होता, बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक भी होता है। हर बच्चे की घर में अपनी आवाज़ होती है। स्कूल के लिए यह आवश्यक है कि कक्षा में भी यह आवाज़ सुनी जाए। समुदायों का सांस्कृतिक स्रोत प्रचुर होता है, लोककथाएँ, लोकगीत, चुटकुले, कलाएँ आदि स्कूल में भाषा और ज्ञान को समृद्ध बना सकते हैं। इससे मौखिक इतिहास भी समृद्ध होगा। लेकिन हम कक्षा में चुप्पी को लादकर बच्चों को दबाते हैं। यह जरूरी है कि सामाजिक-सांस्कृतिक संसार के अनुभवों को भी पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया जाए'। इस उद्धरण से दो बातों को स्पष्ट संकेत मिलता है। एक, बच्चे का सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश महत्वपूर्ण है और उसे कक्षा में उचित स्थान मिलना चाहिए। दूसरा, बच्चे के स्थानीय परिवेश के अनुसार ही कक्षा की क्रियाओं का संपादन होना चाहिए। बात चाहे विवेचनात्मक शिक्षाशास्त्री की हो या ज्ञान के सृजन की — बच्चों के साथ संवाद आवश्यक है। शिक्षा के क्षेत्र में इस

‘संवाद’ पद्धति को काफ़ी समय से निरंतर बल मिल रहा है और यह कहने की, समझाने की कोशिश की जा रही है कि बच्चों को पढ़ाने के लिए संवाद पद्धति का प्रयोग करना चाहिए। लेकिन वास्तविकता यह है कि हमारी तो पूरी भारतीय परंपरा में यही संवाद शामिल है — गुरु और शिष्य के मध्य। उपनिषद् का अर्थ ही है — समीप बैठकर सीखना। यहाँ ‘गुरु’ और ‘शिष्य’ को ‘श्रेष्ठ-हीन’ या ‘श्रेष्ठ-कमतर’ न समझा जाए। दोनों ज्ञानार्जन में सहभागी हैं। दोनों के बीच प्रश्नोत्तर की प्रक्रिया प्रारंभ होती है और इस पूरी प्रक्रिया में ‘गुरु’ कहीं भी, कभी भी न तो अपेक्षा करता है और न ही इस बात के लिए दबाव डालता है कि उसकी बात ही अंतिम सत्य है या उसकी बात को ही सर्वोपरि माना जाए। शिष्य का सवाल करना और गुरु का उत्तर देना — भारतीय परंपरा की इस संवाद शैली में प्रश्न पूछने और उत्तर देने का क्रम लगातार बदलता रहता है। ‘गुरु और शिष्य’ — दोनों ही प्रश्नकर्ता और उत्तरदाता की भूमिका में आते रहते हैं। विवेचनात्मक शिक्षाशास्त्री भी इसी प्रक्रिया को अपनाता है। ‘कक्षा में शिक्षक और शिक्षार्थी की अंतःक्रिया विवेचनात्मक होती है, क्योंकि उसमें यह परिभाषित करने की ताकत होती है कि किसका ज्ञान स्कूल-संबंधी ज्ञान का हिस्सा बनेगा और किसकी आवाज़ उसे आकार देगी...अतः बच्चों में यह चेतना होनी चाहिए कि उनके अनुभव और अनुभूतियाँ भी महत्वपूर्ण हैं। उन्हें अपनी मानसिक योग्यता को विकसित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए ताकि वे स्वतंत्र रूप से तर्क व विचार कर सकें और असहमत होने का साहस रखें’। (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005: 26) समस्त उपनिषदीय पद्धति में इसी चेतना, तर्क, विवेचना,

सहमति, असहमति, अनुभव और अनुभूतियों पर बल दिया जाता है।

लेकिन मूल समस्या यह है कि हमने न तो अपने प्राचीन साहित्य को पढ़ा है और न ही उन्हें सही से जानने का प्रयास किया है। शिक्षा के क्षेत्र में बच्चों के संदर्भ में जिस ‘खोज’, ‘अन्वेषण’ की बात की जाती है, उससे हम ‘बड़े’ कई बार चूक जाते हैं। कई बार यह आभास होने लगता है कि हम संभवतः उन चीज़ों को ज्यादा महत्व दे बैठते हैं जो चीज़ें हमें दूसरों से, दूसरे परिप्रेक्ष्य में, दूसरे परिवेश में मिलती हैं। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के मॉडल के संदर्भ में अकसर फ़िनलैंड की शिक्षा व्यवस्था की बात होती है। फ़िनलैंड में बच्चा सात साल की उम्र में औपचारिक शिक्षा के लिए स्कूल जाता है। लेकिन यह हमें तय करना है कि हमारे बच्चे किस उम्र से औपचारिक शिक्षा व्यवस्था का हिस्सा बनेंगे। यह ठीक है कि जहाँ से जो ठीक लगे उसे अपनाना चाहिए, लेकिन यह भी देख लेना चाहिए कि ‘जहाँ’ से हम ‘जो’ ले रहे हैं वह हमारी अपनी परिस्थितियों से मेल खाता है या नहीं। क्या उसका और हमारा सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश एक जैसा है? क्या उसकी और हमारी शिक्षा संबंधी ज़रूरतें एक जैसी हैं? प्रयास यह होना चाहिए कि हम अपने सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश और आवश्यकताओं के अनुरूप अपनी शिक्षा का मॉडल स्वयं निर्मित करें। भारत जैसे विविधता वाले देश में शिक्षा का कोई एक मॉडल भी कारगर नहीं होगा, क्योंकि हमारा सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश, भूगोल, भाषा, आर्थिक स्थिति और ‘बचपन’ एक जैसा नहीं है। अपने समाज और उस समाज के बच्चों की शैक्षिक आवश्यकता के अनुरूप ही शिक्षा के मॉडल निर्मित किए जाने चाहिए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968 एवं 1986 का गहन विश्लेषण इस ओर संकेत करता है कि दोनों नीतियाँ शिक्षा को बेहतर रूप में परिभाषित करती हैं, लेकिन दोनों में से कोई भी नीति स्पष्ट और ठोस रूप से यह बताने में असफल है कि बच्चे से क्या अपेक्षित है? शाला से क्या अपेक्षित है? दोनों ही नीतियाँ राष्ट्र की बात करती हैं, राष्ट्रीय निर्माण, राष्ट्रीय प्रगति, राष्ट्रीय अखंडता, विज्ञान और तकनीक की बात करती हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 (1992 के संशोधनों सहित) के नीतिगत दस्तावेज़ में एक जगह यह कहा गया है कि, “हमारे राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में ‘सबके लिए शिक्षा’ हमारे भौतिक और आध्यात्मिक विकास की बुनियादी आवश्यकता है”। (1986: 2.1) लेकिन यह नीति कहीं भी इस बात का स्पष्टीकरण नहीं देती कि वह जब ‘भौतिक’ और ‘आध्यात्मिक’ विकास का उल्लेख करती है तो उसका क्या अर्थ है? सीधे-सीधे शब्दों में कहें तो नीति यह बताने में, यह समझाने में असफल है कि भौतिक विकास क्या है? और आध्यात्मिक विकास क्या है? एक बार को भौतिक विकास तो समझ आ सकता है कि जीवन जीने के लिए, राष्ट्र-निर्माण के लिए जो तकनीकी विकास चाहिए, उसमें शिक्षा मदद करे। लेकिन ‘आध्यात्मिक विकास’ का कोई स्पष्टीकरण नहीं है और यही ‘सबसे गंभीर खतरा’ लिए हुए है। दरअसल चीजों को लेकर हमारी जिस तरह की अवधारणा, सोच-समझ होती है, वह हमारी समस्त क्रियाओं, कार्यों को प्रभावित करती है। मेरा अनुभव बताता है कि ‘आध्यात्मिक विकास’ को अक्सर गलत और संकीर्ण दृष्टि से देखा गया है। आज भी आध्यात्मिकता को केवल एक ‘पंथ विशेष’ से और पूजा-पाठ विशेष (और न जाने कितने ‘कर्मकांडों’)

से जोड़कर देखा जाता है। यही कारण है कि वह हम सबके जीवन का हिस्सा नहीं बन पाया है, पर मेरे विचार में आध्यात्मिकता ‘विशुद्ध कर्म’ से जुड़ी है, कर्मकांडों से नहीं। और कर्म भी ऐसा कि जिसमें कल्याण की भावना निहित है, जिसमें चिंतन है, मनन है और सक्रियता है। संस्कृत शब्दकोश (1997: 28) के अनुसार ‘अध्यात्म’ शब्द का अर्थ है—आत्मा या व्यक्ति से संबंध रखने वाला। ‘अध्यात्म’ शब्द का संधि-विच्छेद है— अधि+आत्म। ‘आत्म’ का अर्थ है— स्वयं, आत्म और ‘अधि’ (उपसर्ग के रूप में) का अर्थ है— ऊर्ध्व, ऊपर। इस रूप में ‘अध्यात्म’ का मुख्य अर्थ है— वह पथ जो आत्मा का उन्नयन करता है, व्यक्ति का उन्नयन करता है। यह हमारा दायित्व है कि हम नीतिगत बातों के मूल भाव को ठीक से समझते हुए बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करने के अवसर प्रदान करें।

शिक्षा का संबंध समाज से है। समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा के लक्ष्य, उद्देश्य और स्वरूप निर्धारित होते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968 नैतिक और सामाजिक मूल्यों को पैदा करने की बात करती है। साथ ही वह कहती है कि शिक्षा व्यवस्था को ऐसे स्त्री-पुरुष उत्पादित करने चाहिए जिनका चरित्र दृढ़ हो और जो राष्ट्रीय सेवा एवं विकास के प्रति निष्ठावान हों। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 भी आगे आने वाली पीढ़ियों से यह अपेक्षा करती है कि वे नए विचारों को सतत और सृजनात्मक रूप से आत्मसात कर सकें। यह नीति मानवीय मूल्यों और सामाजिक न्याय की भी बात करती है। इन अनुशंसाओं का निहितार्थ यही है कि शिक्षा के माध्यम से एक श्रेष्ठ नागरिक और श्रेष्ठ नागरिकों के सहयोग से श्रेष्ठ भारत का निर्माण

हो सके। यह बिंदु प्रशंसनीय भी है और विचारणीय भी कि क्या 'आध्यात्मिक विकास' और 'मूल्य और नैतिकता' दो अलग बातें हैं, संभवतः नहीं। ये एक-दूसरे से अलग नहीं हैं। आध्यात्मिकता में नैतिकता और मूल्य अंतर्निहित हैं। एक और विचारणीय बिंदु यह है कि 1968 में जिन मानवीय मूल्यों और सामाजिक न्याय का लक्ष्य रखा गया था, वह आज भी अपेक्षित है। स्थितियाँ आज भी कमोबेश उसी तरह की हैं। आज समाज का जो रूप हम सभी के सामने है, वह इस ओर संकेत करता है कि मूल्यों और नैतिकता को अभी भी बल देने की ज़रूरत है। इसके लिए ज़रूरी है कि शिक्षक और माता-पिता स्वयं अपना उदाहरण प्रस्तुत करें ताकि बच्चे स्वतः ही अपने व्यवहार को परिमार्जित कर लें। शिक्षा के बारे में जितना अनुभवों ने सिखाया है उसके आधार पर यह कहने में कोई संकोच नहीं होता कि मूल्यों और नैतिक विकास के संदर्भ में अनौपचारिक शिक्षा बेहतर परिणाम देती है। इसका कारण यह है कि मूल्यों का शिक्षण नहीं हो सकता। उसके लिए कोई पाठ्यक्रम, कोई पाठ्यपुस्तक इतनी कारगर नहीं होती जितना कारगर प्रदर्शन होता है, स्व-उदाहरण होता है। बच्चे अवलोकन के माध्यम से भी मूल्यों को ग्रहण करते हैं। अतः बच्चों के संपर्क में रहने वालों (माता-पिता, भाई-बहन, दादा-दादी आदि) को स्वयं अपने व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाना होगा, तभी बच्चे भी उस व्यवहार को तर्क की कसौटी पर कसते हुए उसे अपने जीवन में अपना सकेंगे।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में एक प्रयास सराहनीय है और वह है—'समान विद्यालय पद्धति' (कॉमन स्कूल सिस्टम)। समान विद्यालय पद्धति से विभाजित समाज की विषमता कम की जा सकती

थी और सभी बच्चे समान रूप से समान पाठ्यक्रम पढ़ते। लेकिन इतने वर्षों बाद भी 'समान विद्यालय पद्धति' का वह स्वप्न पूरा नहीं हो सका। ऐसा प्रतीत होता है कि शिक्षा के क्षेत्र में भी समाज दो भागों में बँट गया—सरकारी स्कूल और निजी स्कूल। यदि आप स्वयं भी दोनों तरह के विद्यालयों का अवलोकन करें तो आप दोनों तरह के विद्यालयों में अंतर को पहचान पाएँगे। विद्यालय की आधारभूत संरचना, बच्चों का सामाजिक-सांस्कृतिक और आर्थिक परिप्रेक्ष्य, बच्चों का 'बचपन', बच्चों की महत्वाकांक्षाएँ, अभिभावकों की शैक्षिक पृष्ठभूमि और व्यवसाय आदि सभी में अंतर देखा जा सकता है। इन सभी के साथ एक और महत्वपूर्ण बिंदु है—बच्चों और अभिभावकों का संघर्ष। हालाँकि 'समग्र शिक्षा अभियान' (पूर्व में सर्व शिक्षा अभियान, माध्यमिक शिक्षा अभियान) के तहत विद्यालयों में मूलभूत संसाधनों को मुहैया कराने के सफल प्रयास किए गए हैं, लेकिन परिणाम अभी और बेहतर होने की गुंजाइश है। बच्चों की वर्दी, जूते, बस्ता, कॉपियाँ, पाठ्यपुस्तकें और अलग-अलग प्रकार की छात्रवृत्तियाँ भी उपलब्ध कराई जाती हैं, विद्यालयों में शौचालयों, पीने के पानी की भी दुरुस्त व्यवस्था की गई है, लेकिन अभी और प्रयास करने की आवश्यकता है, क्योंकि गुणवत्ता हर बच्चे का मौलिक अधिकार है।

विद्यालयी शिक्षा से आगे बढ़ते हुए अब उनकी बात भी कर लेते हैं जिन पर विद्यालयी शिक्षा की एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी है, वे हैं शिक्षक! "किसी समाज में अध्यापकों के दर्जे से उसकी सांस्कृतिक-सामाजिक दृष्टि का पता लगता है। कहा गया है कि कोई भी राष्ट्र अपने अध्यापकों के स्तर

से ऊपर नहीं उठ सकता। सरकार और समाज को ऐसी परिस्थितियाँ बनानी चाहिए जिनसे अध्यापकों को निर्माण और सृजन की ओर बढ़ने की प्रेरणा मिले।” (राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986: 9.1)। यह बात अक्षरसः सही है। शिक्षकों का दर्जा ऊँचा उठाना ही चाहिए। आखिर एक बच्चे के जीवन का सवाल नहीं है, बल्कि कई बच्चों के जीवन का सवाल नहीं है, कई पीढ़ियों के जीवन का सवाल है... अंततः पूरे राष्ट्र का और राष्ट्र के जीवन का सवाल है।

शिक्षक समाज में भी वैविध्य है। कुछ शिक्षक एकदम अपने काम में लगे रहते हैं। वे और उनकी कक्षा के बच्चे, बस! उनकी दुनिया में इतने ही कम लोग हैं। वे पढ़ाने के लिए ‘किसी तरह के सरकारी आदेशों की प्रतीक्षा’ भी नहीं करते हैं। बस, जुटे रहते हैं। ऐसे शिक्षक अपनी समस्याओं का हल भी स्वयं ही खोज लेते हैं।

कुछ शिक्षक ऐसे भी होते हैं जो बेहतर करना तो चाहते हैं, लेकिन उनकी इच्छाशक्ति, उनका मनोबल इतना कमजोर होता है कि वे जटिल या विपरीत परिस्थितियों के सामने बहुत जल्दी ही घुटने टेक देते हैं। लेकिन अगर इन्हें समुचित सहयोग और मार्गदर्शन मिले तो इनमें सकारात्मक परिवर्तन आता है और ये बेहतर कार्य कर सकते हैं। एक और तरह के शिक्षक होते हैं जो पढ़ाने के अतिरिक्त सभी कार्य कर लेते हैं। इस अंतिम तरह के शिक्षकों की उपस्थिति इस ओर संकेत करती है कि शिक्षक प्रशिक्षण और उनसे संबद्ध संस्थाओं की गुणवत्ता पर निरंतर ध्यान देने की आवश्यकता है। साथ ही इस बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि अंततः हम शिक्षक से क्या अपेक्षाएँ कर रहे हैं? शिक्षकों को किस तरह की बुनियादी सुविधाएँ उपलब्ध कराई गई

हैं? शिक्षकों को बेहतर कार्य करने के लिए किस तरह का प्रेरणादायक परिवेश उपलब्ध कराया गया है? क्या हम शिक्षकों के सहयोग में निरंतर खड़े हैं अथवा नहीं? यहाँ ‘हम’ से आशय शिक्षा व्यवस्था है। अनेक शिक्षक ऐसे भी हैं जो अत्यंत जटिल स्थितियों में अध्यापन का कार्य करते हैं, जैसे—आदिवासी क्षेत्रों में कार्य करना, दुर्गम स्थानों पर कार्य करना, पहाड़ी क्षेत्रों में कार्य करना आदि। ऐसे शिक्षकों को विशेष प्रावधानों की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त यह तथ्य भी ध्यातव्य है कि अब जिस तरह के ‘शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थान’ धड़ाधड़ खुल रहे हैं, उनमें गुणवत्ता का सवाल हमेशा खड़ा रहता है। मेरे विचार से शिक्षक बनना बहुत जटिल कार्य है। इसके लिए बहुत निष्ठा, लगाव की जरूरत होती है। ऐसा नहीं है कि अगर किसी को किसी पाठ्यक्रम में दाखिला न मिले तो वह इस शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रम में दाखिला ले ले। दरअसल, शिक्षक-प्रशिक्षण का काम बहुत कठोर परिश्रम की माँग करता है। इसमें सबसे बड़ी चुनौती बच्चों को ठीक से समझने की कुशलता और ज्ञान की है। बच्चों को विषय पढ़ाने से भी अधिक आवश्यक है — बच्चों को समझना, बच्चों के संपूर्ण व्यक्तित्व को समझना, बच्चों के संदर्भ को समझना। यहाँ संदर्भ से आशय बच्चों के सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य से है। हम यह जानते हैं कि किसी भी व्यक्तित्व के निर्माण में वातावरण की एक महत्ती भूमिका होती है। प्रकृति और परवरिश, दोनों का गुणात्मक प्रभाव बच्चे के व्यक्तित्व को आकार देता है। अतः यह आवश्यक है कि बच्चे को ठीक से समझा जाए और उसके अनुसार उचित व्यवहार किया जाए। इसके लिए शिक्षक-शिक्षार्थी

की तत्परता और अभिवृत्ति, दोनों का सकारात्मक होना अनिवार्य है। शिक्षकों को शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रम के अंतर्गत ऐसे अवसर और परिवेश उपलब्ध कराया जाए जिससे वे विद्यालयी व्यवस्था और उससे जुड़े समस्त पहलुओं, कक्षाई प्रक्रियाओं का सूक्ष्म अवलोकन कर सकें, उसके संबंध में अपने लिए आवश्यक निहितार्थों को समझ सकें। शिक्षक-शिक्षार्थी जितना समय इस 'शिक्षाई और विद्यालयी समझ' को समझने में लगाते हैं, उतना ही वे प्रभावी शिक्षक सिद्ध हो सकेंगे। अतः आवश्यक है कि शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रम को करने वाले शिक्षक-शिक्षार्थी स्वयं गंभीर हों और उनका प्रवेश भी गंभीरता से किया जाना चाहिए। इन्हीं शिक्षकों पर पूरी विद्यालयी शिक्षा का कार्य निर्भर करता है।

प्रभावी शिक्षकों के संदर्भ में उनकी स्वायत्तता एक अहम मुद्दा है। 'अध्यापकों को इस बात की आज़ादी होनी चाहिए कि वे नए प्रयोग कर सकें और संप्रेषण की उपयुक्त विधियाँ और अपने समुदाय की समस्याओं और क्षमताओं के अनुरूप नए उपाय निकाल सकें। *राष्ट्रीय शिक्षा नीति* (1986: 9.1) का यह सुचिंतित विचार दो तरह की चुनौतियों को स्वयं में निहित किए हुए है। एक, शिक्षकों की आज़ादी और दूसरा, स्वयं के सुनियोजित तरीके। ये चुनौतियाँ एक तरह से शिक्षकों की ताकत भी हैं। दरअसल, शिक्षक ही वह व्यक्ति है जिसे बच्चों की समस्त खूबियों और खामियों का ज्ञान होता है। शिक्षक ही हैं जो बच्चों को बिना अहसास दिलाए उनके पूरे व्यक्तित्व का निरंतर अवलोकन करते हैं ताकि वे समय और ज़रूरत के अनुसार सहयोग प्रदान कर सकें। शिक्षकों को यह आज़ादी मिलनी ही चाहिए और शिक्षकों को

इस आज़ादी का उपयोग करना ही चाहिए ताकि वे बच्चों के व्यक्तित्व निर्माण में योगदान दे सकें। यह आज़ादी हर तरह से बच्चे को ही केंद्र में रखती है। इस आज़ादी का दूसरा पहलू यह भी है कि शिक्षक बच्चों की ज़रूरतों के अनुसार उनके लिए उचित शिक्षाशास्त्रीय निर्णय ले सकें। हम सभी जानते हैं कि बच्चों में व्यक्तिगत भिन्नता होती है और कोई एक तरीका या रणनीति कक्षा के सभी बच्चों के लिए समान रूप से कारगर नहीं होती। अतः यह ज़रूरी है कि शिक्षक अपने बच्चों को उनके समस्त परिप्रेक्ष्यों में रखते हुए आवश्यकतानुसार उचित शिक्षाशास्त्रीय पद्धति अपना सकें। इस तरह शिक्षक ही वह धुरी बन जाता है जिसके निर्णय और प्रज्ञा, बच्चों के विकास को प्रभावित करते हैं। देश भर के शिक्षकों को नए प्रयोग करने और उनके अनुरूप अपनी-अपनी कक्षाई प्रक्रियाओं को निर्धारित करने की आज़ादी देने के प्रावधान पर बल दिया जाना चाहिए। इससे शिक्षकों की गुणवत्ता का संवर्धन होगा।

शिक्षकों की गुणवत्ता के संदर्भ में यह समझना ज़रूरी है कि उन्हें शिक्षा की सही-सही समझ और वे बच्चे जो शिक्षा के अधिकार के हकदार हैं, उनके मन को समझना ज़रूरी है। विषय पर अधिकार, बच्चों के मन को समझना, देश-दुनिया की अद्यतन जानकारी और बच्चों में पैनी तार्किक शक्ति एवं गहन अवलोकन क्षमता का विकास, स्वयं में आत्मविश्वास, ये सब एक शिक्षक के लिए ज़रूरी है। लेकिन ऐसे शिक्षकों की संख्या कम ही है। अनेक शिक्षक ऐसे हैं जिन्हें इस बात की जल्दी रहती है कि किसी तरह पाठ्यक्रम पूरा हो जाए और जो अभी शिक्षक बनने की 'कतार' में हैं, उन्हें इस बात की

जल्दी है कि बस किसी तरह 'बिना शिक्षा-संस्थान जाए और बिना प्रशिक्षण के ही' उनके शिक्षक होने का प्रमाण-पत्र मिल जाए। ऐसा नहीं है कि यह 'बेसब्री' केवल भावी शिक्षकों में ही है, बल्कि बहुत-से शिक्षक शिक्षा संस्थानों में भी है... इनमें निजी संस्थानों का स्थान सर्वोपरि है...। यही कारण है कि शिक्षक बच्चों के व्यक्तित्व पर अपनी कोई भी छाप नहीं छोड़ पाते। उनके व्यक्तित्व में ऐसी कोई 'विशिष्टता' नहीं होती कि बच्चे उनसे प्रभावित हो सकें। दूसरों को प्रभावित करने वाले व्यक्तित्व की जो आभा होती है, वह आज के शिक्षक के पास नहीं है और न ही उनके 'शिक्षक' के पास...। और जब यह प्रभावशीलता ही नहीं है तो बच्चे किसे अपना मॉडल बनाएँगे?

विद्यालयों में पढ़ाए जाने वाले विषय और उनकी अवधि से भी एक खास तरह की असंतुष्टि-सी रहती है। इसका मुख्य कारण यह है कि अनेक शिक्षक अपने विषय से 'बाहर' जाकर सोच ही नहीं पाते। यदि किसी शिक्षक से बच्चे की शिक्षा के बारे में पूछिए या फिर यह पूछिए कि बच्चा कैसा है तो शिक्षक विषयानुसार बच्चे के निष्पादन के बारे में बताना शुरू कर देता है—'सोनम गणित में तो अच्छी है लेकिन न जाने उसे हिंदी में क्या हो जाता है? अगर वह थोड़ी मेहनत विज्ञान में भी कर ले तो उसकी अच्छी 'परसेंटेज' बन जाएगी। राहुल का गणित बहुत ही कमजोर है और इतिहास में उसे तारीखें याद नहीं रह पातीं। अंग्रेजी में रट-रटाकर नंबर तो ले आता है लेकिन समझ नहीं है'...आदि। अभिभावक भी तो शिक्षक से यही जानने को उत्सुक रहते हैं — 'सोनम के कितने नंबर आए हैं? राहुल के कितने परसेंट

माक्स आए हैं?' आदि। लेकिन न तो अभिभावकों की और न ही शिक्षकों की इस बात में रुचि होती है कि 'सोनम दूसरे बच्चों के साथ मिल-जुलकर रहती है क्या? राहुल को खाली समय में क्या करना सबसे अच्छा लगता है?' आदि। हमने बच्चों की शिक्षा को केवल विषय की पढ़ाई-लिखाई का पर्याय बना दिया है। असंतुष्टि का कारण यही है कि जो शिक्षा विषय-आधारित हो, वह जीवन-आधारित कैसे हो सकती है। शिक्षा जीवन से जुड़ी है और शिक्षा अपनी अंतर्निहित क्षमताओं को विकसित करने का माध्यम है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी.) एक शैक्षिक निकाय है जो विद्यालयी शिक्षा के लिए पाठ्यचर्या का निर्माण करने के लिए अधिकृत है। 1964-66 के राष्ट्रीय शिक्षा आयोग की सिफारिशों के अनुसार एन.सी.ई.आर.टी. ने 1975 में दसवर्षीय स्कूली पाठ्यचर्या बनाई। उसकी प्रस्तावना में शिक्षा और राष्ट्रीय विकास को जोड़ा गया—“शिक्षा आयोग (1964-66) ने राष्ट्रीय विकास को शिक्षा के सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्षों में से एक महत्वपूर्ण पक्ष के रूप में रेखांकित किया है और वस्तुतः इसे विशाल स्तर पर 'शांतिपूर्ण सामाजिक परिवर्तन' का एकमात्र माध्यम स्वीकार किया है।” लेकिन शिक्षा की इस ताकत को व्यापक रूप से अथवा बड़े पैमाने पर ज़मीनी स्तर पर साकार रूप देने के लिए ज़रूरी है कि नीति बनाते समय उसके क्रियान्वयन पर और भी ज्यादा समय, ऊर्जा और बल दिया जाए। क्या कारण रहा कि हम शिक्षा को 'शांतिपूर्ण सामाजिक परिवर्तन' का एकमात्र माध्यम स्वीकार करने के बावजूद बड़े स्तर पर समाज में कोई सकारात्मकता नहीं देख पा रहे हैं। इसका एक

कारण संभवतः यह हो सकता है कि हमने शिक्षा को विद्यालय की चहारदीवारी में बंद कर दिया और 'जीवन-जीवन' का नारा लगाते रहे। कथनी और करनी में कोई तालमेल तो होना ही चाहिए। शिक्षा से जुड़ी इतनी महत्वपूर्ण बात को हमें स्वयं अपने जीवन में और बच्चों के जीवन में उतारने के लिए कुछ ठोस कदम उठाने होंगे।

यह सही बात है कि किसी भी देश का विद्यालयी पाठ्यक्रम उसके संविधान की भाँति उसकी आत्मा का प्रतिनिधित्व करता है (दसवर्षीय स्कूली पाठ्यक्रम की रूपरेखा—1975)। हम जिस तरह का समाज देखना चाहते हैं, हम जिस तरह का मानव देखना चाहते हैं, उसी तरह से शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। देश की हर शिक्षा नीति और हर आयोग ने यही किया है। देश को ज़रूरत महसूस हुई तकनीकी विकास की तो उस समय की शिक्षा नीति ने तकनीकी विकास और विज्ञान पर बल दिया। इसी तरह जब समानता हमारा मुख्य उद्देश्य रहा तो हमने समान स्कूल शिक्षा प्रणाली की बात की। यह इसी ओर संकेत करता है कि हम जैसा देखना चाहते हैं, वैसा अपनी शिक्षा व्यवस्था में ढालते जाते हैं। यह इस ओर भी संकेत करता है कि शिक्षा किसी भी समाज को बदलने की ताकत रखती है। हमें उस ताकत का सही दिशा में, सही उपयोग करने की ज़रूरत है।

इस बात की सिफ़ारिश 1975 से की जाती रही है कि विद्यालयी-पाठ्यक्रम का केंद्र चरित्र-निर्माण होना चाहिए। इसका सर्वश्रेष्ठ तरीका बच्चे को आत्मनिर्माण का सही पाठ खोजने में सहायता देना तथा बिना हस्तक्षेप किए उसकी गतिविधियों पर दृष्टि रखकर उस पर चलने के लिए उसे प्रेरित

करना, आवश्यकता पड़ने पर उचित सलाह देना है। आत्मनिर्माण मानव के लिए अत्यंत आवश्यक है... चरित्र-निर्माण की इस प्रक्रिया के साथ करुणा, सहनशीलता, साहस, निर्णय क्षमता और सर्व-मंगल आदि गुणों का विकास भी जुड़ा हुआ है। (दसवर्षीय स्कूली पाठ्यक्रम की रूपरेखा—1975, 2.9.1 और 2.9.2:5), लेकिन यह तय करने के बाद से, हमने 1975 के बाद जो शिक्षा दी, वह बच्चों में किसी भी तरह की क्षमता का संवर्धन करने में खरी नहीं उतर पाई। इसका मुख्य कारण मुझे यही नज़र आता है कि केवल साध्य अच्छा होने से कुछ हासिल नहीं होता, साधन भी अच्छा होना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि अगर हमने चरित्र-निर्माण को प्रमुखता दी तो उसके लिए साधन भी जुटाने चाहिए थे। कुछ ऐसा करना चाहिए था जिससे उस लक्ष्य को हासिल किया जा सके। साधनों में केवल भौतिक साधन ही नहीं आते, बल्कि हमारी पूरी क्रिया प्रणाली भी इसका प्रमुख हिस्सा है। हमारी रणनीति में कमी रह गई जिससे आज भी यह लगता है कि काश! शिक्षा का स्वरूप अच्छा होता। इससे मुझे यह बात भी समझ आती है कि जिसके चरित्र का निर्माण किया जाना है और जो चरित्र का निर्माण करने में मदद करेगा, उनके बीच आत्मीय संबंध होना ज़रूरी है। साथ ही स्वयं शिक्षक का चरित्र बहुत दृढ़ होना चाहिए। 'चरित्र-निर्माण' कोई ऐसी चीज़ नहीं है जिसे 'पढ़ा दिया जाए', 'जिसकी कोई किताब बना दी जाए', 'जिसका कोई कालांश हो'। वह तो व्यवहार की और आदर्श/मॉडल प्रस्तुत करने की चीज़ है। 'चरित्र-निर्माण' महज़ शब्दों का आडंबर बनकर, एक ढाँचा बनकर रह गया है जिसमें 'सत्त्व'/'तत्त्व'



है ही नहीं। दरअसल आज जो भी समाज हम देखते हैं, वह 'उस ज़माने' का ही प्रतिफल है। अगर सच में उस पाठ्यक्रम में आत्मा होती तो आज के मानव में वह स्पंदन और संस्कार, दोनों होते।

पूरी चर्चा के आधार पर यही कहा जा सकता है कि भारतीय शिक्षा में 'भारतीयता' का पुट होना ज़रूरी है। इसके लिए पहले 'भारत' को समझना ज़रूरी है। हम न केवल विद्यालयी शिक्षा में विदेशी तर्ज पर शैक्षिक सिद्धांतों को लागू कर रहे हैं, बल्कि शिक्षक शिक्षा में भी यानी शिक्षकों की शिक्षा में भी उन्हें आयातित कर रहे हैं। उदाहरण के लिए, भारतीय बच्चे को, उसके व्यक्तित्व को समझने के लिए हमने फ्रायड, एडलर और युंग के सिद्धांतों का सहारा लिया जबकि 'अष्टांग हृदय' नामक भारतीय ग्रंथ, भारतीय परिप्रेक्ष्य में भारतीय बच्चे को समझने में मदद करता है। वह मनोविकारों को भी समझने में मदद करता है। इतना ही नहीं, *तैत्तिरीयउपनिषद्* में अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष और आनंदमय कोष के माध्यम से शिक्षा के उद्देश्य और उसकी प्राप्ति की ओर संकेत किया गया है। *कठोपनिषद्* में 'श्रेयस और प्रेयस' की चर्चा करते हुए जीवन का और जीवन के माध्यम से शिक्षा का उद्देश्य निर्धारित किया गया है — श्रेयस और प्रेयस दोनों भिन्न-भिन्न हैं। ये दोनों भिन्न-भिन्न प्रयोजनों से मनुष्य को बाँधते हैं। इन दोनों में से श्रेयस को ही स्वीकार करना चाहिए। श्रेयस और प्रेयस दोनों ही मनुष्य की ओर अग्रसर होते हैं। बुद्धिमान दोनों के बारे में विचार करके श्रेयस का ही चयन करते हैं जबकि मूर्ख व्यक्ति सांसारिक आनंद के लिए प्रेयस का चयन करते हैं। यह उद्भरण जीवन के अंतिम लक्ष्य

की ओर संकेत करता है कि जो 'सही है, उत्तम है, वही स्वीकार्य होना चाहिए, आनंद के पीछे भागने से जीवन का सार हासिल नहीं होता, केवल भटकाव ही होता है...' जो जीवन का सत्य है वही शिक्षा का भी सत्य है, क्योंकि शिक्षा जीवन के साथ ही जुड़ी हुई है, क्योंकि शिक्षा का उद्देश्य ही है जीवन को सार्थक और बेहतर तरीके से जीना।

जब मैं जीवन के संदर्भ में 'श्रेयस' की बात कर रहा हूँ तो साथ ही राष्ट्र के जीवन की भी बात कर रहा हूँ जो जीवन के लिए श्रेयस्कर है, वही राष्ट्र के लिए भी श्रेयस्कर है, तो अब हमें ही सोचना होगा कि जीवन और शिक्षा का उद्देश्य कैसे अलग हो सकता है? और इन दोनों से अलग राष्ट्र का उद्देश्य कैसे अलग हो सकता है? राष्ट्र के निर्माण में ऐसे नागरिकों का योगदान होता है जिनका व्यक्तित्व संतुलित और सुदृढ़ हो, जिनका व्यक्तित्व प्रखर और ठोस हो तथा जिनका व्यक्तित्व अपनी आभा से दूसरों को प्रभावित करता है, दूसरों को बदलने का सामर्थ्य रखता है। प्रयास यह होना चाहिए कि शिक्षा व्यवस्था ऐसी हो जो बच्चे को एक शिक्षार्थी होने का 'आई-कार्ड' न देकर एक अच्छा मानव, नागरिक होने की योग्यता दे।

किसी भी राष्ट्र-निर्माण के लिए उसकी शिक्षा व्यवस्था का सुनियोजित होना बहुत ज़रूरी है। राष्ट्र-निर्माण का रास्ता भी (जीवन-निर्माण का तो है ही) शिक्षा से होकर गुजरता है। हम जिस तरह का समाज, राष्ट्र बनाना चाहते हैं, उसी तरह की शिक्षा देनी शुरू करनी होनी। आप अनुभूत कर सकेंगे कि हमारा समाज, हमारा राष्ट्र भी उसी तरह का बन रहा है लेकिन 'बनना' बहुत ही धीरे-धीरे होता

है। परिवर्तन में समय तो लगता ही है। सब कुछ योजनाबद्ध तरीके से होता है। अगर शिक्षा राष्ट्र के निर्माण का साधन है तो यही शिक्षा किसी राष्ट्र के विनाश का भी कारण हो सकती है और होती ही है। इसलिए राष्ट्र को मजबूत करने का एक ही तरीका कारगर है और वह है शिक्षा को मजबूत बनाना। किसी भी राष्ट्र का निर्माण केवल शिक्षा से ही संभव है... जितनी जल्दी हो, इस बात को नीति-निर्माता भी समझ लें और 'राज' के 'नेता' भी...आखिर उन्हें 'राज' भी तो इसी राष्ट्र पर ही करना है, इस राष्ट्र के लोगों पर करना है। अगर किसी भी 'राज' में शिक्षा बेहतर होगी तो 'राज' करने में अड़चनें, दुविधाएँ भी कम ही आएँगी। सही

और गलत में अंतर करने की योग्यता या सही का साथ देना, गलत का विरोध करना—ये सभी एक स्वस्थ समाज के लिए ज़रूरी हैं ही, तो शिक्षा में इससे परहेज क्यों? ज़रूरत इस बात की है कि हम सबसे पहले उस समाज को देखें, समझें, जानें जिस समाज में शिक्षा का उपयोग किया जाना है। इसके बाद ही गहन विचार-विमर्श के उपरांत 'शिक्षा का चरित्र' तय किया जाना चाहिए। शिक्षा के चरित्र के अनुरूप उस शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने के तरीके निर्धारित किए जाने चाहिए। यह सब करने के लिए दृढ़ इच्छाशक्ति का होना अनिवार्य शर्त है। अंततः 'शिक्षा' हम सभी का सरोकार है और इसके लिए हमें कटिबद्ध होना होगा।

### संदर्भ

आप्टे, वामन शिवराम. 1997. *संस्कृत हिंदी कोश*. न्यू भारतीय बुक कॉर्पोरेशन, न्यू चंद्रावल, दिल्ली.

ओड, लक्ष्मीलाल के. 2011. *शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि*. राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर.

मानव संसाधन विकास मंत्रालय. 1986. *राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986*. मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नयी दिल्ली.

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. 1975. *दसवर्षीय स्कूली पाठ्यक्रम की रूपरेखा — 1975*. रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली.

———. 2006. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005*. रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली.

# समुदाय शिक्षण प्रतिमान

## शिक्षक शिक्षा में एक श्रेष्ठ व्यवहार

नीतिन कुमार ढाढोदरा\*  
भरत जोशी\*\*

इस लेख का प्रमुख उद्देश्य गुजरात विद्यापीठ के शिक्षा विभाग द्वारा शिक्षक शिक्षा में प्रयुक्त एक श्रेष्ठ नवाचार, 'समुदाय शिक्षण प्रतिमान' को उजागर करना है। इसमें परंपरागत पाठ की तुलना में समुदाय शिक्षण प्रतिमान की विशेषताएँ निर्दिष्ट की गई हैं। समुदाय शिक्षण प्रतिमान के विभिन्न पहलू, जैसे — पाठ के उद्देश्य, पाठशाला, शिक्षक, विद्यार्थी, विषय-वस्तु, समय-सीमा, पद्धति-प्रयुक्ति, गृह-कार्य, निरीक्षण-मूल्यांकन और प्रतिपोषण पर प्रकाश डाला गया है। अंत में इस प्रतिमान पर आधारित पाठ से विद्यार्थी-शिक्षक, शिक्षक शिक्षा संस्थान एवं समुदाय को मिलने वाले लाभ की चर्चा की गई है। समुदाय शिक्षण प्रतिमान विद्यार्थी-शिक्षक के सामाजिक उत्तरदायित्व को विकसित करने में अहम भूमिका अदा कर सकता है। प्रभावी शिक्षक एवं शिक्षण हेतु कई आवश्यक कौशल इस प्रतिमान से विकसित हो सकते हैं। शिक्षा की उपादेयता सिद्ध करने तथा समाज की समस्याओं को हल करने में यह प्रतिमान अति महत्वपूर्ण हो सकता है।

महात्मा गांधी ने कहा है कि सामाजिक पुनःनिर्माण एवं चेतना को विकसित करने के लिए शिक्षा एक बुनियादी उपकरण है। महात्मा गांधी ने शिक्षा को शरीर, मन और आत्मा के विकास का साधन माना है। वहीं शिक्षक को समाज के समग्र व्यक्तित्व के विकास का उत्तरदायित्व सौंपा है। किंतु शिक्षकों ने अपनी भूमिका और उत्तरदायित्व को मर्यादित बनाकर रख दिया है। वे केवल पठन, लेखन और गणन से ही संबंध रखते हैं। ज्यादा-से-ज्यादा वे परीक्षा के लिए सूचित पाठ्यक्रम को पूर्ण करते हैं (National Commission on Teachers-1, 1983)। शिक्षक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा

की रूपरेखा 2009 (एन.सी.एफ.टी.ई.) में शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम को प्रभावी बनाने की अपेक्षा रखते हुए बताया गया है कि यह कार्यक्रम विद्यार्थी-शिक्षक को सामाजिक संवेदनशीलता एवं चेतना तथा मानवीय संवेदनशीलता विकसित करने में सहायक होना चाहिए। साथ ही यह भी कहा गया है कि हम ऐसे शिक्षक की अपेक्षा रखते हैं जो शांति के मूल्यों, लोकशाही जीवन शैली, समानता, न्याय, स्वतंत्रता, भाईचारा, असांप्रदायिकता और सामाजिक पुनःनिर्माण के लिए उत्साही हो (एन.सी.एफ.टी.ई. 2009, पृ. 21)। पर क्या हमारे शिक्षक शिक्षा संस्थान यह अपेक्षाएँ पूरी करते हैं? शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रम

\* शोधार्थी, शिक्षा विभाग, गुजरात विद्यापीठ, आश्रममार्ग, अहमदाबाद, गुजरात – 380014

\*\* प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, गुजरात विद्यापीठ, आश्रममार्ग, अहमदाबाद, गुजरात – 380014

में इस अपेक्षा को पूर्ण करने हेतु आज भी हम समग्र रूप से कोई श्रेष्ठ व्यवहार को नहीं अपना सके हैं।

राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद्, 2014 ने बी.एड. के द्विवर्षीय ढाँचे में भावी शिक्षकों की व्यावसायिक सज्जता के विकास हेतु व्यावसायिक क्षमतावर्धन (Enhancement of Professional Capacities) बंधित कार्यक्रमों को स्थान दिया है और इस बात पर बहुत ही जोर दिया है कि इंटरनशिप के दौरान भावी शिक्षकों को नियमित शिक्षक के रूप में ही कार्य करना होगा जिसमें आयोजन, शिक्षण, मूल्यांकन और पाठशाला के शिक्षक, समुदाय के सभ्य लोगों एवं बालकों के साथ पारस्परिक विचार-विमर्श का भी समावेश होता है (राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् विनियम, 2014, पृ. 2)। समुदाय शिक्षण प्रतिमान, व्यावसायिक क्षमतावर्धन के उद्देश्य की पूर्ति में सहायक बनता है।

जोशी और दीक्षित (2012), वर्तमान शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम की समाजोन्मुखता के बारे में कहते हैं कि शिक्षक के उत्तरदायित्व को मात्र वर्ग-खंड तक सीमित कर दिया गया है तथा संबंधित कौशलों को ही सिखाया जा रहा है, जिसके परिणामस्वरूप शिक्षकों को न तो सामाजिक समस्याओं की जानकारी होती है, न उसके कारणों की खोज के प्रति रुचि। इस दिशा में पर्याप्त शिक्षण-प्रशिक्षण न मिलने के कारण शिक्षकों में इन समस्याओं के समाधान के लिए अपेक्षित ज्ञान एवं कौशल का विकास नहीं हो पा रहा है। इसलिए शिक्षण-प्रशिक्षण के द्वारा तैयार हुआ शिक्षक, आजीवन समाज की उपेक्षा कर अपने आप में सीमित रहता है। समुदाय शिक्षण प्रतिमान भावी शिक्षक को समाज और सामाजिक समस्याओं के प्रति संवेदनशील बनाता है। प्रस्तुत

प्रपत्र में गुजरात विद्यापीठ के शिक्षा विभाग द्वारा शिक्षक शिक्षा में प्रयुक्त नवाचार 'समुदाय शिक्षण प्रतिमान' को उजागर किया गया है। शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में यह प्रतिमान 'जोशी का समुदाय शिक्षण प्रतिमान' (Joshi's Innovative Model for Community Education) नाम से जाना जाता है (जोशी, 2014)। विद्यार्थी शिक्षक इस प्रतिमान का उपयोग करके पाठ दे सकते हैं। इस प्रपत्र में परंपरागत पाठ की तुलना में समुदाय शिक्षण प्रतिमान आधारित पाठ की विशेषताएँ निर्दिष्ट की गई हैं। समुदाय शिक्षण प्रतिमान के विभिन्न पहलुओं, जैसे—पाठ के उद्देश्य, पाठशाला, शिक्षक, विद्यार्थी, विषय-वस्तु, समय-सीमा, पद्धति-प्रयुक्ति, गृह-कार्य, निरीक्षण-मूल्यांकन और प्रतिप्रेषण (feedback) पर प्रकाश डाला गया है।

### समुदाय शिक्षण प्रतिमान के प्रमुख उद्देश्य

समुदाय शिक्षण प्रतिमान के प्रमुख उद्देश्य हैं—

- विद्यार्थी-शिक्षकों के सामाजिक उत्तरदायित्व का विकास करना।
- पाठशाला, शिक्षा और समाज के मध्य संबंध स्थापित करना।
- सामाजिक विकास के लिए विद्यार्थी-शिक्षकों को तैयार करना।
- समाजोत्थान में शिक्षक की भूमिका स्पष्ट करना
- विद्यार्थी-शिक्षकों की सामाजिकता का विकास करना।
- विद्यार्थी-शिक्षकों को सामाजिक समस्याओं एवं चुनौतियों के प्रति अवगत कराना तथा उन समस्याओं के उपाय खोजने में सक्षम बनाना।
- विद्यार्थी-शिक्षकों में समाज परिवर्तक के गुण विकसित करना।

- सामाजिक समस्याओं के उन्मूलन हेतु आयोजित कार्यक्रमों का नेतृत्व कर सके, ऐसे शिक्षकों का निर्माण करना।
- विद्यार्थी-शिक्षकों में सामाजिक विकास हेतु विभिन्न प्रवृत्तियों एवं कार्यक्रमों का आयोजन और संचालन की क्षमता का निर्माण करना।
- विद्यार्थी-शिक्षक में व्यावसायिक क्षमताओं और सर्जनात्मकता को विकसित करना।

### समुदाय शिक्षण प्रतिमान में पाठशाला

परंपरागत पाठ, कक्षा की चहारदीवारी के अंदर दिए जाते हैं। किंतु, इस प्रतिमान आधारित पाठ की पाठशाला समाज है। विद्यार्थी-शिक्षक यह पाठ कक्षा के अंदर नहीं, बल्कि समाज या लोगों के बीच प्रस्तुत करता है। गली, मोहल्ला, गाँव, चौराहा, शहर कहीं भी जहाँ पर लोग बसते हों, ऐसा सार्वजनिक स्थल समुदाय शिक्षण प्रतिमान की पाठशाला बनता है। कोई भी सार्वजनिक स्थान, जैसे—बस अड्डा, रेलवे स्टेशन, सब्जी मंडी, ग्राम पंचायत, खेल परिसर, उद्यान इत्यादि समुदाय शिक्षण प्रतिमान की पाठशाला के रूप में स्थान ले सकते हैं।

### समुदाय शिक्षण प्रतिमान में समय-सीमा

परंपरागत पाठ की समय-सीमा 30 मिनट से लेकर 60 मिनट तक की होती है। वैसे भी शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान में पढ़ रहे विद्यार्थी-शिक्षक 35 मिनट की समय-सीमा के अभ्यस्त होते हैं, लेकिन इस पाठ की समय-सीमा निर्धारित नहीं होती। 30 मिनट से लेकर दो घंटे तक का पाठ हो सकता है। पाठ की विषय-वस्तु और विषय-वस्तु निरूपण की पद्धति या प्रयुक्ति के आधार पर समय-सीमा निर्धारित होती है।

### समुदाय शिक्षण प्रतिमान में शिक्षक और विद्यार्थी

सामान्यतः एक पाठ में एक ही शिक्षक शिक्षण कार्य करता है, लेकिन इस प्रतिमान आधारित पाठ में एक ही पाठ में, एक से ज्यादा शिक्षक कार्य करते हैं। एक से ज्यादा शिक्षक मिलकर समुदाय की लाक्षणिकता को ध्यान में रखकर विषय-वस्तु निर्धारित करते हैं। विषय-वस्तु और उसकी निरूपण शैली के अनुसार शिक्षकों की संख्या निर्धारित की जाती है। ज्यादातर इस प्रतिमान आधारित पाठ में चार-पाँच शिक्षक मिलकर शिक्षा कार्य करते हैं।

### समुदाय शिक्षण प्रतिमान की पद्धतियाँ और प्रयुक्तियाँ

परंपरागत पाठ में विषय-वस्तु निरूपित करने की पद्धतियाँ और प्रयुक्तियाँ लेखन या वाचन-केंद्रित होती हैं। विषय-वस्तु निरूपण की पद्धतियाँ-प्रयुक्ति में लोग अथवा समुदाय मनोरंजन के साथ-साथ मनोमंथन कर सकें, इस बात पर प्रतिमान आधारित पाठ जोर देता है। इस प्रतिमान आधारित पाठ में विद्यार्थी-शिक्षक अन्य विद्यार्थी-शिक्षकों की सहायता से नाटक, मूक-अभिनय, गान, समूहगान, सांस्कृतिक कार्यक्रम, चर्चा-सत्र, नुक्कड़ नाटक, वार्ता-कथन, गरबा गान, कठपुतली खेल, ग्रामसभा, पोस्टर, प्रदर्शन, खेल, भवाई, वीडियो निदर्शन जैसी पद्धति या प्रयुक्ति से शिक्षा कार्य करता है।

### समुदाय शिक्षण प्रतिमान में विषय एवं विषय-वस्तु

इस प्रतिमान का प्रमुख उद्देश्य विद्यार्थी-शिक्षकों के सामाजिक उत्तरदायित्व का विकास करना है। इसलिए इसकी विषय-वस्तु, समाज की समस्याओं

से संबंधित होती है। जो विद्यालयी शिक्षा की विषय-वस्तु से संबंधित हो सकती है या नहीं भी हो सकती है। समुदाय शिक्षण प्रतिमान की विषय-वस्तु पाठ्यपुस्तक में से नहीं, किंतु समाज में से चयनित होती है। स्थानीय वातावरण, समुदाय, पर्यावरण या संस्कृति के विकास के लिए आवश्यक बिंदुओं को इस पाठ की विषय-वस्तु में स्थान दिया जाता है। लोग या समाज के विकास में सहायक या बाधारूप तत्वों को उजागर करने वाले बिंदु, विषय-वस्तु के रूप में स्वीकार्य बनते हैं। जैसे कि बाल विवाह की अवैज्ञानिकता, बचत का महत्व, जाति भेद, जेंडर भेद, जनसंख्या में वृद्धि, मतदान का महत्व आदि समुदाय शिक्षण प्रतिमान की विषय-वस्तु हो सकते हैं। पर्यावरणीय समस्याओं को उजागर करने वाले मुद्दे भी इस प्रकार के पाठ की विषय-वस्तु हो सकते हैं, जैसे कि जल बचाओ, प्रदूषण निवारण, पेड़ का महत्व, शहरीकरण, स्वच्छता का महत्व, ऊर्जा बचत आदि इस पाठ के विषय बन सकते हैं। लोगों के व्यक्तित्व एवं विचारों को निखारने वाले विषय, जैसे कि व्यसन मुक्ति, स्थानिक स्वराज की संस्थाएँ, भारतीय संविधान, मूलभूत अधिकार, अंधश्रद्धा, वाचन का महत्व, स्वास्थ्यवर्धक खुराक, व्यायाम के लाभ आदि इस पाठ की विषय-वस्तु हो सकते हैं। संक्षिप्त में, ऐसा कह सकते हैं कि समाज को प्रगति के पथ पर ले जाने वाला कोई भी मुद्दा इस पाठ की विषय-वस्तु हो सकता है।

### समुदाय शिक्षण प्रतिमान में मूल्यांकन

समुदाय शिक्षण प्रतिमान आधारित पाठ के दौरान विद्यार्थी-शिक्षक का मूल्यांकन शिक्षक-प्रशिक्षक, निरीक्षक के रूप में करते रहते हैं। इस प्रकार का

मूल्यांकन सहभागी या असहभागी भी हो सकता है। शिक्षक-प्रशिक्षक जब विद्यार्थी-शिक्षक के पाठ का मूल्यांकन करता है, तब पाठ आयोजन, साधन-सामग्री का विनियोग, सहयोग के लिए किए गए प्रयास, प्रवृत्ति का आयोजन और संचालन, वातावरण-सर्जन, विषय-प्रवेश, प्रवृत्ति-प्रभुत्व, शिक्षक की सक्रियता, शिक्षक का व्यक्तित्व, आत्मविश्वास और प्रतिबद्धता जैसे दस बिंदुओं पर आधारित मानदंड को ध्यान में रखा जाता है।

### समुदाय शिक्षण प्रतिमान में गृह-कार्य

परंपरागत पाठ के अंत में विद्यार्थी-शिक्षक सभी विद्यार्थियों को गृह-कार्य देते हैं। दूसरे दिन वे विद्यार्थी गृह-कार्य को लिखित या मौखिक रूप से प्रस्तुत करते हैं। किंतु इस प्रतिमान आधारित पाठ में गृह-कार्य का स्वरूप अलग होता है, पाठ के अंत में यहाँ पर विद्यार्थी-शिक्षक लोगों को विषय-वस्तु के अनुरूप संकल्पबद्ध करने का प्रयास करते हैं। पाठ के अंत में, पाठ के सार तत्व को लोगों के मानसपटल पर दृढ़ किया जाता है। विद्यार्थी-शिक्षक पाठ की विषय-वस्तु से लोगों की गैर मान्यता को खंडित करने का प्रयास करता है। समुदाय और लोगों के विचारों को परिवर्तित करने तथा मान्यता में बदलाव लाने का प्रयास विद्यार्थी-शिक्षक की ओर से होता है।

### समुदाय शिक्षण प्रतिमान में प्रतिपोषण

परंपरागत पाठ में जब विद्यार्थी-शिक्षक शिक्षा कार्य करता है, तब निरीक्षक कक्षा में बैठकर या वीडियो रिकॉर्डिंग देखकर शिक्षा कार्य में सुधार हेतु लिखित या मौखिक रूप से प्रतिपोषण देते हैं। इस प्रतिमान आधारित पाठ में निरीक्षक दूर से विद्यार्थी-शिक्षक के पाठ का निरीक्षण करता रहता है। कभी-कभी

विद्यार्थी-शिक्षक के पाठ में शामिल होकर सहभागी अवलोकन भी करता है, आवश्यकता होने पर प्रतिपोषण देता रहता है। यहाँ पर पाठ पूर्ण होने के बाद निरीक्षक विद्यार्थी-शिक्षकों से चर्चा करके भी प्रतिपोषण देते हैं। कभी-कभी लोग या समुदाय की ओर से भी प्रतिपुष्टि ली जाती है। सुविधा होने पर वीडियो रिकॉर्डिंग या फोटोग्राफ़ की सहायता से भी प्रतिपोषण देने का या समीक्षा करने का प्रयास होता है। सह-विद्यार्थी-शिक्षक से भी प्रतिपोषण लिया जाता है।

### समुदाय शिक्षण प्रतिमान के लाभ

समुदाय शिक्षण प्रतिमान से, विद्यार्थी-शिक्षक, शिक्षक शिक्षा संस्थान और समाज को विशेष लाभ होता है। समुदाय शिक्षण प्रतिमान पर हुए पूर्व अनुसंधान (जोशी, 2014 एवं जोशी और दीक्षित 2012) के निष्कर्ष यह बताते हैं कि विद्यार्थी-शिक्षक को केंद्र में रखकर देखा जाए तो उसके सामाजिक उत्तरदायित्व का विकास होता है। विद्यार्थी-शिक्षक समूह या दल में काम करने की क्षमता प्राप्त करता है। सामाजिक समस्याओं को सुलझाने के लिए विद्यार्थी-शिक्षक में नेतृत्व प्रदान करने की क्षमता विकसित होती है। एक प्रभावी शिक्षक बनने के लिए ज़रूरी कौशलों, जैसे—गान, अभिनय, लेखन, पठन, कथन, संचालन, संवाद, मंचन आदि का विकास होता है। विद्यार्थी-शिक्षक समाज के साथ संबंध प्रस्थापित करने की कला सीखता है। समाजोत्थान के लिए ज़रूरी कार्यक्रमों का आयोजन और अमलीकरण करने की सूझ-बूझ का विकास होता है। विद्यार्थी-शिक्षक की सामाजिकता में वृद्धि होती है, सामाजिक समस्याओं के प्रति विद्यार्थी-शिक्षक को

संवेदनशील बनाया जा सकता है। विद्यार्थी-शिक्षक में विभिन्न सृजनात्मक और कलात्मक शक्तियों का आविष्कार होता है, व्यावसायिक क्षमताओं का संवर्धन होता है और सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि विद्यार्थी-शिक्षक का भी अच्छी तरह से समाजीकरण होता है।

इस प्रतिमान आधारित पाठ से शिक्षक शिक्षा संस्थान को भी कई लाभ प्राप्त होते हैं। संस्थान और समाज के मध्य सकारात्मक संबंध प्रस्थापित होता है, संबंध ज्यादा मज़बूत बनते हैं। संस्था की शैक्षिक प्रवृत्तियों को समुदाय में आदर के साथ स्वीकृति मिलती है। संस्थान लोक कल्याण एवं समुदाय कल्याण हेतु मानव बल या धनराशि का सहयोग सरलता से प्राप्त कर सकता है। समाज में संस्थान का प्रचार बढ़ता है। यू.जी.सी., नैक जैसी संस्थानों के परीक्षण में संस्थान का यह पहलू सकारात्मक बिंदु बनता है।

इस प्रतिमान आधारित पाठ से समुदाय में जाग्रति फैलाई जा सकती है। लोगों के मन में वैचारिक परिवर्तन किया जा सकता है। सामाजिक सुसंवादिता प्रस्थापित करने में समुदाय को सहायता मिलती है। विभिन्न सामाजिक प्रश्नों को सुलझाने के लिए लोगों का सहकार एवं सहयोग प्राप्त किया जा सकता है। अच्छे विचारों, आदतों और संस्कारों का समावेश समुदाय के लोगों में किया जा सकता है। लोगों के लिए उपयोगी जानकारी का प्रचार और प्रसार इस पाठ की सहायता से किया जा सकता है। इस पाठ के माध्यम से सामाजिक और सांस्कृतिक एकता बनाने में सफलता मिलती है। समाज को कुप्रथा, अंधश्रद्धा और गैर-मान्यता से मुक्त करने में सहायता मिलती है। लोगों के बीच परिवार भावना, एकता,

सहकार और ऐक्य की भावना का विकास किया जा सकता है।

### **समुदाय शिक्षण प्रतिमान कैसे लागू किया जाए?**

समुदाय शिक्षण प्रतिमान लागू करने के लिए कोई विशेष सुविधा या दिन की आवश्यकता नहीं होती है। यह कोई अतिरिक्त अभ्यास नहीं है। शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के विद्यार्थी-शिक्षकों को तालीम के दौरान लगभग 40 पाठ देने होते हैं। इन 40 पाठों में से कोई भी चार-पाँच पाठों में समुदाय शिक्षण प्रतिमान का उपयोग किया जा सकता है। जिस तरह पाठ देने के लिए शिक्षक शिक्षा संस्थान के शिक्षक पाठशाला का संपर्क करते हैं। उसी तरह इस प्रतिमान का जब उपयोग करना हो, तब उस गाँव, शहर, गली या मोहल्ले के प्रतिनिधियों से संपर्क किया जाता है। उन प्रतिनिधियों के साथ बातचीत करके उपयुक्त स्थान पर इस प्रतिमान का उपयोग किया जाता है। इस प्रकार गाँव, गली या मोहल्ले के लोग हमारे लिए समुदाय की भूमिका निभाते हैं।

### **समुदाय शिक्षण प्रतिमान आयोजित करने हेतु आवश्यक सुविधाएँ**

समुदाय शिक्षण प्रतिमान आयोजित करने के लिए किसी विशेष सुविधा की आवश्यकता नहीं होती है। एक शिक्षक-प्रशिक्षक, जिसे लोक शिक्षण में विशेष अभिरुचि हो, वह इस पाठ का केंद्र बिंदु होता है। समुदाय शिक्षण प्रतिमान, जिस जगह पर आयोजित होने वाला हो, उस जगह के प्रशासनिक अधिकारियों एवं स्थानीय नेताओं की अनुमति के साथ आयोजित करना उचित होगा। इस प्रतिमान पर आधारित पाठ में विद्यार्थी-शिक्षक अन्य विद्यार्थी-शिक्षकों की

सहायता से नाटक, मूक-अभिनय, गान, समूहगान, सांस्कृतिक कार्यक्रम, चर्चा सत्र, नुक्कड़ नाटक, वार्ता-कथन, गरबा-गान, कठपुतली खेल, ग्राम-सभा, पोस्टर, प्रदर्शन, खेल, भवाई, वीडियो प्रदर्शन जैसी पद्धतियों या प्रयुक्तियों से शिक्षा कार्य करता है। इसलिए शिक्षक-प्रशिक्षक को भी ऐसी पद्धतियों और प्रयुक्तियों का ज्ञान होना आवश्यक है।

### **उपसंहार**

शिक्षक समाज में उच्च आदर्श स्थापित करने वाला व्यक्ति होता है। किसी भी देश या समाज के निर्माण में शिक्षा की अहम भूमिका होती है। समुदाय शिक्षण प्रतिमान विद्यार्थी-शिक्षक के सामाजिक उत्तरदायित्व को विकसित करने में अहम भूमिका निभा सकते हैं। समाज और समाज की समस्याओं को हल करने में शिक्षा की उपादेयता सिद्ध करने हेतु इस प्रतिमान आधारित पाठ का स्थान अति महत्वपूर्ण है। प्रभावी शिक्षक के लिए आवश्यक कहे जा सकने वाले ऐसे कई कौशल, इस पाठ से विकसित हो सकते हैं। भावी शिक्षकों को समाजोन्मुख बनाने में यह प्रतिमान उपयोगी सिद्ध होगा। जोशी (2014) द्वारा प्राप्त समुदाय शिक्षण प्रतिमान (model) एवं देवड़ा डी. एच. (2017) द्वारा लिखित पुस्तक इस पाठ को आयोजित करने हेतु विशेष मार्गदर्शन दे सकते हैं। एन. सी. टी. ई., यू. जी. सी., एन. सी. एफ. टी. ई., एन. पी. ई. और विभिन्न शिक्षा आयोगों ने भावी शिक्षकों के सामाजिक उत्तरदायित्व से संबंधित जो अपेक्षाएँ रखी हैं, वह इस पाठ से पूर्ण हो सकती हैं। देश के सभी शिक्षक शिक्षा संस्थानों में इस पाठ को अवश्य स्थान मिलना चाहिए।



### संदर्भ

- जोशी, बी. और दीक्षित, महेश नारायण दीक्षित. 2012. समुदाय-शिक्षण प्रतिमान — एक प्रयोग. *संदर्भ*. 2 (1), पृ. 77–84.
- जोशी, बी. 2014. *प्रोस्पेक्टिव टीचर्स सेंसिबिलिटी टू वर्ड्स रेस्पॉन्सिबिलिटी फॉर सोशल हार्मनी थ्रू कम्युनिटी एजुकेशन* (रिसर्च प्रोजेक्ट रिपोर्ट). आई.ए.एस.ई. डीमड यूनिवर्सिटी, राजस्थान.
- देवड़ा, डी.एच. 2017. *लोक शिक्षण*. यूनिवर्सिटी ग्रंथ निर्माण बोर्ड, अहमदाबाद.
- राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद्. 2010. *नेशनल करीकुलम फ्रेमवर्क फॉर टीचर एजुकेशन, 2009*. एन.सी.टी.ई., नयी दिल्ली.
- 2014. *राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् विनियम, 2014*. पृ. 2. एन.सी.टी.ई., नयी दिल्ली.
- शिक्षा मंत्रालय. 1983. *रिपोर्ट ऑफ द नेशनल कमीशन ऑन टीचर-1*. शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली.

# विद्यालयी शिक्षा में शांति शिक्षा

राखी गिरीराज धिंग्रा\*  
सुनीता मगरे\*\*

‘शिक्षा’ मनुष्य के जीवन का सबसे महत्वपूर्ण भाग है, जो मनुष्य को जन्म से मृत्यु तक मानवीय गुण विकसित करने में मदद करती है। इस प्रक्रिया में कई मूल्यों का योगदान होता है। इन मूल्यों को विकसित करने के लिए खास तौर पर बच्चों और युवाओं को प्रोत्साहित किया जाना आवश्यक है। आज विद्यार्थियों में अच्छे मानवीय मूल्यों को आत्मसात कराना और उनको अमल कराना जरूरी हो गया है। अतः शांति शिक्षा, नैतिक मूल्यों के साथ सकारात्मक दृष्टिकोण, शांति मूल्यों और कौशलों का मानव जगत् तथा प्रकृति के बीच सामंजस्य बिठाने का कार्य करती है। इसमें व्यक्तिगत विकास हेतु आवश्यक प्यार, उल्लास, उम्मीद और हिम्मत के लिए आवश्यक आंतरिक मानव अधिकार, सहयोग, सामंजस्य, सहिष्णुता, सामाजिक ज़िम्मेदारियाँ, सांस्कृतिक विविधता आदि का सम्मान भी शामिल है। उपरोक्त सभी बातें आपस में जुड़ी होने के कारण कई मूल्यों को मिलाकर शांति शिक्षा का निर्माण हुआ है। इसलिए, शांति शिक्षा को अलग विषय के रूप में न पढ़ाकर सभी विषयों में समाहित कर पढ़ाया जा सकता है। इस लेख में शांति शिक्षा की आवश्यकता, शांति शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य, शांति शिक्षा के लिए भारत सरकार द्वारा स्थापित आयोगों एवं समितियों के द्वारा दी गई अनुशंसाओं का उल्लेख, शांति शिक्षा को किस प्रकार से पाठ्यक्रम में आसानी से जोड़ा जा सकता है, इसका स्पष्ट उल्लेख किया गया है।

शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मानव का सर्वांगीण विकास करना है। क्योंकि आज विश्व एक वैश्विक गाँव-सा बन गया है। उसकी माँगों को पूरा करने के लिए मानव का बहुपक्षीय विकास होना अति आवश्यक है। लेकिन वैश्वीकरण के साथ ही हर तरफ प्रतिस्पर्धा का वातावरण भी अत्यंत तीव्र गति से बढ़ रहा है। जिससे समस्त मानव मनो में अशांति फैल गई है। ज्ञातव्य है कि केवल बौद्धिक विकास से ही आतंक रहित विश्व का निर्माण नहीं किया जा सकता है। इसके लिए

शांति और अहिंसा को शिक्षा के हर पहलू और स्तर से जोड़ना होगा। संयुक्त राष्ट्र संघ की इकाई यूनेस्को के संविधान में मानवाधिकार से संबंधित धारा 26 में स्पष्टतः उल्लेख किया गया है कि, “शिक्षा का उद्देश्य मानव के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना तथा सभी राष्ट्रों, जातियों एवं धार्मिक संस्थाओं में प्रेम, सहिष्णुता एवं परस्पर मैत्री की भावना का सृजन करने की प्राथमिकता होना चाहिए।” अतः संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी शांति शिक्षा का पुरजोर समर्थन

\* शोधार्थी, शिक्षाशास्त्र विभाग, मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई – 400 032

\*\* सहायक प्राध्यापक, शिक्षाशास्त्र विभाग, मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई – 400 032

किया है और अपने सदस्य राष्ट्रों से आग्रह किया है कि विद्यार्थियों को शांति का पाठ अनिवार्य रूप से पढ़ाया जाना चाहिए। जिसके फलस्वरूप हर व्यक्ति को शांति की महत्ता का आभास होगा और वह अशांति एवं युद्ध के दुष्परिणामों से अवगत होगा। आज विश्व में बढ़ता आतंकवाद स्पष्ट रूप से अशिक्षा, बेरोज़गारी, निराशा एवं अराजकता का ही दुष्परिणाम है। आज भारत सहित विश्व, शांति के लिए शिक्षा अर्थात् मूल्य शिक्षा को बढ़ावा दे रहा है। गांधीजी के अनुसार समाज, शोषण और हिंसा से मुक्त हो जिसके लिए युवा पीढ़ी का एक साथ रहना और शांति उनके जीवन का अभिन्न अंग होना चाहिए। इसी कारण भारत में शिक्षा के सभी आयोग और समितियों ने सिफ़ारिश की कि शिक्षा के सभी स्तरों पर मूल्य शिक्षा को लागू किया जाना चाहिए। परिणामस्वरूप *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखाओं 1975, 1977, 2000 एवं 2005* में शिक्षा में शांति का एकीकरण किया गया।

*राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005* में शिक्षा में शांति से जुड़े कई मूल्यों को विद्यालय के संपूर्ण भाग में शामिल किया गया, जैसे — पाठ्यक्रम, विद्यालय का वातावरण, विद्यालय प्रबंधन, शिक्षकों के आपसी संबंध, अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया और सभी प्रकार के विद्यालय के कार्यों में शांति मूल्यों को शामिल किया गया। संदर्भ किताबों और सामग्री का गहन अध्ययन करने पर पाया गया कि शांति शिक्षा को शिक्षा के सभी स्तरों पर लागू किया जाना चाहिए ताकि शिक्षक, विद्यार्थी और संपूर्ण समाज को उसका सर्वोत्तम लाभ मिल सके। (अरूल्समी, 2013)

पी ए एजुकेशनरी सॉर्स सेंटर (पी.ए.आर.सी.), यह एक शांति मंच है। पी.ए.आर.सी. के सदस्यों का

मुख्य उद्देश्य साथ में मिलकर शांति शिक्षा के माध्यम से शांति की संस्कृति को बढ़ावा देना और शांति का निर्माण करना है। शांति शिक्षा एक सर्वांगीण सहभागिता प्रक्रिया है जिसमें लोकतंत्र और मानव अधिकार, अहिंसा, सामाजिक और आर्थिक न्याय, जेंडर समानता, पर्यावरण स्थिरता, अंतर्राष्ट्रीय न्याय व कानून व्यवस्था, मानव सुरक्षा तथा पारंपरिक रूप से शांति का अभ्यास का अध्ययन कराया जाता है (राव, 2012)। अनेक एन.जी.ओ. द्वारा भी शांति शिक्षा के प्रचार व प्रसार हेतु महत्वपूर्ण कार्य किए जा रहे हैं। वे इस बात को भली-भाँति समझ गए हैं कि शिक्षा में शांति की एक अहम व महत्वपूर्ण भूमिका है। खासकर युवाओं में आदर, सामाजिक और सामुदायिक कार्य हेतु, शांति शिक्षा एक प्रमुख घटक है। उसी के साथ ही शांति शिक्षा का आधार सामाजिक न्याय और समानता को माना गया है जिसमें अहिंसात्मक समाज के विकास पर जोर दिया गया है। इसी प्रकार मानव अधिकार का आधार समानता और बिना किसी भेदभाव के समाज में शांति को स्थापित करना है।

### शांति शिक्षा से संबंधित लेख

- डेविस (2015) के अनुसार, शांति शिक्षा के अंतर्गत न्याय-संवेदनशील शिक्षा की आवश्यकता है। इसीलिए शिक्षकों, विद्यालय व प्रशिक्षण कॉलेजों को स्वयं हिंसा से मुक्त होने की आवश्यकता है। अब भौतिक या प्रतीकात्मकता के साथ शांति की स्थिति पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए।
- डार ललितथम्मा (2014) के लेख के अनुसार, कश्मीर में विभिन्न समूहों के बीच हिंसा को

कम करने और सहनशीलता, सद्भाव की संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए शांति शिक्षा बहुत ही महत्वपूर्ण है। विद्यालय, कॉलेजों व विश्वविद्यालयों में शांति शिक्षा कार्यक्रम को शुरू करने की आवश्यकता है। शांति शिक्षा को अगर पाठ्यक्रम में शामिल किया जाए तो वह स्थायी शांति को सशक्त करने का कार्य कर सकती है। शांति शिक्षा सांप्रदायिक दंगों एवं आतंकवाद जैसी समस्याओं के समाधान में फ़ायदेमंद साबित होगी। यह युवाओं की समस्याओं का हल करने व उदासीन स्थिति से बाहर निकालने का साधन साबित हो सकती है।

- जॉनसन और जॉनसन (2014) के लेख के अनुसार, मनुष्य को जीवन जीने के लिए शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। बस यही एक कारण नहीं है, बल्कि जीवन को उपयोगी, फ़ायदेमंद और शांतिपूर्ण बनाना सीखने हेतु भी शिक्षा की आवश्यकता होती है। मानव एक सामाजिक प्राणी होने के कारण व्यक्तिगत जीवन, सामाजिक समायोजन को बढ़ावा देना, दोस्ती, एक-साथ रहने की कला, आदर-सम्मान, न्याय, प्यार और शांति आदि की भी शिक्षा उसे दी जानी चाहिए।

### शांति शिक्षा की आवश्यकता

वर्तमान समय में संपूर्ण विश्व आतंकवाद, युद्ध की आशंका, भ्रष्टाचार तथा भेदभाव, असमानता की दहशत में जी रहा है। कई प्रकार की विध्वंसकारी घटनाएँ, जैसे — वर्ल्ड ट्रेड सेंटर पर हमला, मुंबई में बम विस्फोट, देश में आंतरिक अशांति उत्पन्न करने वाली घटनाएँ आदि के कारण यह प्रश्न सामने आता

है कि इस समस्या का समाधान शांति शिक्षा के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। शांति, शांति शिक्षा के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है, परंतु यह शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो न्याय, क्षमता एवं अहिंसा जैसे मूल्यों पर आधारित हो। शांति शिक्षा की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए ही यू.एन. जनरल असेम्बली रिसोल्यूशन ने वर्ष 2000 से 2010 तक के दशक को “शांति की संस्कृति तथा अहिंसा का दशक” घोषित किया था। शांति शिक्षा के द्वारा मानसिक शांति, व्यक्ति की निजी शांति, पारिवारिक शांति, सामाजिक शांति, विभिन्न राष्ट्रों के बीच शांति स्थापित की जा सकती है। शांति किसी एक मस्तिष्क की स्थिति होती है, जो व्यक्ति के कौशल, अभिवृत्ति और व्यवहार को विकसित करती है। जिससे वह अपने वातावरण के साथ समायोजन के योग्य बनता है। शांति शिक्षा एक ऐसी शिक्षा है जो व्यक्ति में सुरक्षा की भावना का विकास करती है। जेम्स पेज के अनुसार, शांति व्यक्ति के आत्मविश्वास को बढ़ावा देती है। इसके लिए प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं जिम्मेदार होना चाहिए, जैसे — सामाजिक अन्याय और युद्ध के परिणामों के प्रति जागरूकता, स्वयं का तथा दूसरों का कल्याण करने की भावना को प्रोत्साहन देना आदि। स्थायी शांति स्थापित करने के लिए संपूर्ण विश्व को आगे आना होगा। विश्व के समस्त नागरिकों को इसमें अपना योगदान देना होगा। (शांति के लिए शिक्षा, राष्ट्रीय फ़ोकस सूमह का आधार पत्र, 2005)।

### शांति शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य

शांतिमय जीवन जीने वाले व्यक्ति का निर्माण करना ही शांति शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है। ‘शांति शिक्षा

मानव को स्वयं के साथ, दूसरों के साथ तथा पर्यावरण के साथ शांतिपूर्वक रहने पर जोर देती है। इसीलिए आदर्श जीवन और शांतप्रिय व्यक्तित्व के निर्माण व विकास हेतु शांति शिक्षा के निम्न उद्देश्य हैं—

- शिक्षा के माध्यम से शांति को स्थापित करना।
- विद्यार्थियों में सामाजिक कौशलों तथा सामंजस्य के साथ जीवन जीने के दृष्टिकोण का विकास करना।
- सामाजिक न्याय के प्रति विचारों को अधिक शक्तिशाली बनाना।
- जिम्मेदारी और वर्तमान की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए धर्मनिरपेक्ष संस्कृति का प्रचार करना।
- शिक्षा के द्वारा लोकतांत्रिक संस्कृति का निर्माण करना।
- शिक्षा के माध्यम से राष्ट्रीय एकात्मकता की समृद्धि में योगदान देना।
- अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना को विकसित करना।
- शांति के उपभोक्ताओं के बजाय शांति के निर्माता बनने के योग्य बनाना।
- मानव गरिमा के प्रति सम्मान की भावना उत्पन्न करना।
- अहिंसक और गंभीर विचारधारा को विकसित करना।
- बालकों में धार्मिक सहिष्णुता, अन्य प्रजातियों के प्रति आदर भाव, धार्मिक व नैतिक मूल्यों के प्रति आस्था विकसित कर धर्मनिरपेक्ष संस्कृति का प्रचार करना।
- बालकों में तार्किक चिंतन तथा विश्वव्यापी ज्ञान की खोज की वृत्ति को विकसित करना।

- बालक जिस जगत में रह रहे हैं, उस जगत के प्रति उदार मनोवृत्ति विकसित करना।
- अहिंसात्मक समाज की स्थापना कर अहिंसा के प्रति गंभीर विचारधारा उत्पन्न करना।
- शांति के लिए शिक्षा को जीवन शैली के रूप में अपनाना।

**शांति शिक्षा के लिए विभिन्न आयोगों एवं समितियों के द्वारा दी गई अनुशंसाओं का उल्लेख निम्नलिखित है (अरूल्समी, 2013)—**

- शांति और अहिंसा की संस्कृति हेतु सरकारी तथा गैर-सरकारी संगठनों एवं शैक्षणिक संस्थानों को शामिल करना।
- शांति शिक्षा को सभी विषयों का हिस्सा बनाया जाए जिसके माध्यम से विद्यार्थियों को ज्ञान, कौशल, जागरूकता, सकारात्मक दृष्टिकोण तथा नैतिक मूल्यों को बढ़ाने हेतु प्रोत्साहित किया जाए।
- शांति शिक्षक को स्वयं में शांति हेतु आवश्यक कौशलों का विकास करना चाहिए।
- सेमिनार, कार्यशाला, परिसंवाद आदि का आयोजन एन.सी.ई.आर.टी., यू.जी.सी व अन्य आयोगों व संगठनों द्वारा करवाना चाहिए।
- शिक्षक, विद्यार्थियों को शांति शिक्षा सिखाने के लिए लर्निंग पैकेज बनाएँ जिससे विद्यार्थियों की सक्रिय भागीदारी, सकारात्मक बदलाव, दृढ़ विश्वास और शांति हेतु कार्य करने में बढ़ावा मिलेगा।
- शिक्षक को अंतर्राष्ट्रीय समझ के लिए स्वयं को तैयार करना चाहिए। विद्यार्थियों को भी अंतर्राष्ट्रीय समझ हेतु तैयार करें जिससे वे

शांति, सहयोग, मानव अधिकार और मौलिक स्वतंत्रता के बारे में समझ सकें।

- विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय तथा शिक्षा से संबंधित सभी लोगों को शांति शिक्षा के प्रति जागरूकता और विकास हेतु कार्य करना चाहिए, जिसमें अभिभावकों व समुदाय को भी शामिल करना चाहिए।
- शिक्षकों द्वारा बच्चों को शांति दिवस और उससे जुड़ी गतिविधियों को करने हेतु प्रोत्साहित करना चाहिए।
- हिंसा और शांति की संस्कृति के सिद्धांतों और रणनीतियों को सभी विषयों के पाठ्यक्रम में एकीकृत करना, स्थानीय वास्तविकताओं और परंपराओं को ध्यान में रखते हुए सांस्कृतिक विविधता और अंतर्राष्ट्रीय फ्रेमवर्क को ध्यान में रखकर कार्य करें।
- अहिंसा और शांति की संस्कृति को बढ़ावा देने वाले व्यक्तियों और राजनेताओं को आमंत्रित किया जाना चाहिए।

**वर्तमान में शांति शिक्षा के लिए केंद्र एवं राज्य सरकार तथा राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर की शैक्षणिक संस्थाओं द्वारा विद्यालयी शिक्षा में शांति शिक्षा के लिए निम्नलिखित प्रयास किए जा रहे हैं—**

- कई स्कूलों द्वारा हर साल 21 सितंबर को अंतर्राष्ट्रीय शांति दिवस का आयोजन किया जा रहा है।
- शांति विषय पर चर्चा सत्र, सेमिनार, कार्यशाला, सम्मेलन आदि का भी समय-समय पर आयोजन किया जा रहा है।

- शांति हेतु आवश्यक जागरूकता कार्यक्रमों का भी आयोजन किया जा रहा है।
- विद्यालयों द्वारा बालकों में शांति को स्थापित करने हेतु कई प्रकार के अनुसंधान कार्यों को किया जा रहा है।
- खेलों द्वारा पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं के माध्यम से शांति शिक्षा को बढ़ावा देने के साथ ही उसका अनुकरण विद्यार्थी अपने जीवन में भी करें, इस पर प्रमुखता से ध्यान देकर कार्य किया जा रहा है।

### **वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विद्यालयी शिक्षा द्वारा शांति शिक्षा**

शांति शिक्षा का प्रमुख ध्येय संपूर्ण रूप से विश्व में शांति बनाए रखने में मदद करना है। शांति शिक्षा की आज सबसे ज्यादा ज़रूरत देश के युवा वर्ग को है, जिनका दिमाग काफ़ी उत्तेजित और अधिक संवेदनशील है। युवा वर्ग देश का भावी नागरिक है। इसलिए उसकी संवेदनशीलता और उत्तेजना का सही उपयोग किया जाना अधिक ज़रूरी है। अगर हमें बदलाव लाना है तो इसकी शुरुआत सर्वप्रथम विद्यालय तथा विद्यालय के पाठ्यक्रम में कुछ बदलाव लाकर आसानी से की जा सकती है। शांति शिक्षा का समावेश पाठ्यक्रम में इस प्रकार से किया जाए जिसमें विद्यालय व कक्षा का वातावरण, शिक्षक-विद्यार्थी संबंध, पाठ्यक्रम, विद्यालय, प्रबंधन तथा विद्यालय व पाठ्यक्रम से जुड़ी अनेक गतिविधियों आदि का समावेश हो। इसे पाठ्यक्रम में इस प्रकार से सम्मिलित किया जाए कि विद्यार्थियों में कभी भी निराशा, असुरक्षा, अधीरता, तनाव जैसी भावनाओं का निर्माण न हो। साथ ही उनके

आस-पास और मीडिया के माध्यम से हिंसा के गलत प्रचार का बच्चों के कोमल मन पर किसी भी प्रकार का नकारात्मक प्रभाव न पड़े। शांति शिक्षा विद्यार्थियों को हिंसा के बदले शांति का चुनाव करने में मदद करती है। जिससे वे शांति का सिर्फ उपभोग करने के बदले शांति का निर्माण करने की प्रक्रिया में स्वयं सहायता कर सकें। इस हेतु शांति शिक्षा को पाठ्यक्रम में छह प्रमुख माध्यमों के द्वारा आसानी से जोड़ा जा सकता है।

### **शांति शिक्षा का पाठ्यक्रम में एकीकरण करने के प्रमुख माध्यम**

- **विषय संदर्भ** — शांति शिक्षा को पाठ्यक्रम में इस तरह से रखा जाना चाहिए जिससे वह अलग विषय के रूप में नजर न आकर सभी विषय में निहित है, ऐसा महसूस हो। शांति शिक्षा को वर्तमान पाठ्यक्रम के अनुसार ही पढ़ाया जाना चाहिए। मगर इसे पढ़ाने की विधि, शांति से संबंधित कार्यक्रमों तथा नवीन विषयों के माध्यम से समझाया जाना चाहिए। शांति शिक्षा को विद्यार्थियों की कक्षा, उम्र और शिक्षा के अनुसार ही समझाया जाना चाहिए। प्रत्येक विषय के माध्यम से शांति शिक्षा की संकल्पना को विद्यार्थियों के दिमाग और दृष्टिकोण, दोनों में बदलाव लाने तथा विश्व मूल्यों को आत्मसात करने हेतु प्रयोग किया जाना चाहिए।
- **अध्यापन पद्धतियाँ** — शांति शिक्षा को विद्यार्थियों को किस प्रकार से सिखाया जाए? इस बात से अधिक ज़रूरी यह है कि विद्यार्थियों को क्या सिखाया जाए? विद्यार्थियों को जाति, धर्म से हटकर मानव अधिकार, शांति, खुशी

और किस तरह से समस्या का समाधान करना चाहिए, सिखाया जाना चाहिए। विद्यार्थियों को मानव अधिकार, शांति, खुशी और किस तरह से समस्या का समाधान करना चाहिए, सिखाया जाना चाहिए। विद्यार्थियों को शांति की खोज भौतिक सुख-सुविधाओं में न खोजकर अपने आंतरिक मन में खोजनी चाहिए, इस बात की शिक्षा पर अधिक ज़ोर देना चाहिए।

- **पाठ्य सहभागी क्रियाएँ** — पाठ्य सहभागी क्रियाओं द्वारा विद्यार्थियों को भविष्य की शिक्षा दी जाती है। पाठ्यक्रम के माध्यम से विद्यार्थियों को केवल सैद्धांतिक ज्ञान से ही नहीं अवगत कराया जाता है, परंतु अभ्यास के माध्यम से उन्हें प्रात्यक्षिक ज्ञान दिया जाता है। विद्यार्थियों को अगर हम प्रात्यक्षिक पद्धति द्वारा शिक्षा दें तो वे अपनी कमज़ोरियों और क्षमताओं को अच्छी तरह से समझने लगते हैं जिससे वे अपना सर्वांगीण विकास आसानी से कर पाते हैं। पाठ्य सहभागी क्रियाओं द्वारा विद्यार्थी समूह में कार्य करना सीखते हैं, उसी के साथ उनमें नेतृत्व करने तथा निर्णय लेने की भी क्षमता का विकास होने लगता है।
- **कर्मचारियों का विकास** — कर्मचारियों का विकास, शांति शिक्षा को पाठ्यक्रम में एकीकरण करने हेतु अति आवश्यक है। विद्यालय का विकास कर्मचारियों के विकास पर ही आधारित होता है, क्योंकि कर्मचारी वर्ग अगर अधिक उत्साही और तत्पर होगा तो सारे काम समय पर और व्यवस्थित तरीके से होंगे। कर्मचारियों के विकास हेतु व्यक्तिगत और व्यावसायिक रिश्तों को अच्छी तरह से बनाए रखना ज़रूरी है, ताकि

अंतर्राष्ट्रीय समझ, लोकतंत्र तथा शांति को बनाए रखा जा सके। इसके लिए संस्था का कार्य है कि वह अपने कर्मचारियों को समय-समय पर प्रेरणा दे। इसके साथ ही कर्मचारी अपने कार्य से संतुष्ट महसूस करें।

- **कक्षा नियोजन** — कक्षा में भिन्नता वाले विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने आते हैं, इस कारण शांति की संस्कृति को स्थापित किया जाना आवश्यक है। शांति शिक्षा के माध्यम से शिक्षक, विद्यार्थियों की कई प्रकार की समस्याओं का समाधान करते हैं। विद्यार्थियों में अच्छे सदाचार, नीतियाँ, शिष्टाचार, अच्छे बुरे की समझ, समस्या का समाधान, सुनने और समझने की क्षमता का विकास करना आदि कई गुणों का विकास करना शिक्षक का प्रथम कर्तव्य है।
- **विद्यालय नियोजन** — शांति शिक्षा को सुचारु रूप से स्थापित करने हेतु पाठ्यक्रम के साथ ही विद्यालय में शांति शिक्षा का नियोजन किया जाना अति आवश्यक है। इसके लिए संस्थापक का प्रमुख कार्य है कि वे इसकी स्थापना हेतु स्वयं भी अपनी ओर से शांति शिक्षा के लिए कार्य करें। शांति शिक्षा हेतु सर्वप्रथम विद्यालय का वातावरण लोकतांत्रिक सिद्धांतों पर आधारित होना चाहिए। इसके लिए अनेक पद्धतियों का क्रियान्वयन किया जाना अति आवश्यक है।

**राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में शांति शिक्षा हेतु गतिविधियों के लिए सुझाव**

- विद्यालय में विशेष क्लबों और रीडिंग रूम की स्थापना की जाए जो शांति संबंधी समाचारों पर

और ऐसी घटनाओं पर केंद्रित हो जो सामाजिक न्याय और समानता के विरुद्ध हो।

- ऐसी फ़िल्मों की सूची तैयार की जाए जो न्याय और शांति के मूल्यों को बढ़ावा देती हों। उन्हें समय-समय पर विद्यालय में दिखाया जाए।
- शिक्षा में शांति के प्रयास हेतु मीडिया को सहयोगी बनाया जाए। प्रमुख पत्रकारों को बच्चों को संबोधित करने के लिए बुलाया जाए। बच्चों के विचार कम-से-कम महीने में एक बार छापे जाएँ।
- विद्यालय में धार्मिक और सांस्कृतिक विविधता के उत्सवों का आयोजन किया जाए।
- विद्यालय में ऐसे कार्यक्रमों का आयोजन किया जाए जिससे महिलाओं के प्रति सम्मान और उत्तरदायित्व की भावना का विकास हो।

समाज में उत्पन्न विवादों को सुलझाने के लिए अहिंसात्मक उपाय व गतिविधियों को खोजने हेतु कौशलों के निर्माण की आवश्यकता है। स्थानीय, राष्ट्रीय व वैश्विक स्तर पर दैनंदिन बढ़ती हिंसा के कारण विद्यालयी शिक्षा पाठ्यक्रम में शांति शिक्षा को प्रमुख स्थान देना अति आवश्यक हो गया है। शिक्षा के माध्यम से शांति को स्थायी रूप से स्थापित किया जा सकता है। इस स्थायी शांति में सहनशीलता, न्याय, अंतः सांस्कृतिक समझ और नागरिक ज़िम्मेदारियाँ भी शामिल हैं। इसलिए शिक्षा को पुनः नवीन रूप में परिभाषित करने की आवश्यकता महसूस की जा रही है। इस हेतु विद्यालयी पाठ्यक्रम में शांति शिक्षा को प्राथमिक रूप से सम्मिलित किया जाना चाहिए।



## निष्कर्ष

आज हम सबकी जिम्मेदारी है कि हमें शांति शिक्षा के प्रति जागरूक होने की आवश्यकता है। वर्तमान समय में मानव की ज़िंदगी में सबसे ज्यादा जगह शारीरिक-मानसिक तनाव, क्रोध, चिंता, अवसाद, जैसी अनगिनत मानसिक बीमारियों ने ले ली है। किसी भी व्यक्ति को आरामदायक जीवनयापन करने के लिए शांति की ही सबसे

अधिक आवश्यकता होती है। शांति मनुष्य के संपूर्ण जीवन को प्रभावित करती है, मनुष्य की जीवनयापन की आवश्यकताओं के पश्चात् सबसे बड़ी ज़रूरत शांति को माना जा रहा है। निष्कर्षस्वरूप कहा जा सकता है कि शांति शिक्षा वर्तमान समय की आवश्यकता है। अतः शांति शिक्षा को विद्यालयी शिक्षा में प्राथमिक रूप से सम्मिलित किया जाना आवश्यक है।

## संदर्भ

- अरूल्समी. 2013. *पीस एंड वैल्यू एजुकेशन*. नीलकमल पब्लिकेशन, हैदराबाद.
- डार, ललितम्मा. 2014. *एन इम्प्रीकल स्टडी ऑन पर्सेप्शन ऑफ़ यूथ टुवर्ड्स पीस एजुकेशन इन कश्मीर*. <http://www.iosrjournals.org/iosr-jrme/papers/vol-4%20issues-6/version-1/104616468.pdf> से लिया गया है.
- डेविस. 2015. *द पॉलिसी ऑफ़ पीस एजुकेशन इन पोस्ट कॉन्फ़्लिक्ट कंट्रीज़*. <http://soc.kuleuven.be.crpdp/files/working-papers/working-papersdavis.pdf> से लिया गया है.
- यूनेस्को. 2018. *कन्स्टीट्यूशन ऑफ़ द यूनाइटेड नेशंस एजुकेशनल, साइंटिफ़िक एंड कल्चर ऑर्गनाइज़ेशन*. बेसिक टेक्स्ट. [http://portal.unesco.org/en/ev.php-URL\\_ID=15244&URL\\_DO\\_TOPIC&URL\\_SECTION=201.html](http://portal.unesco.org/en/ev.php-URL_ID=15244&URL_DO_TOPIC&URL_SECTION=201.html) से लिया गया है.
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. 2010. *वे टू पीस—ए रिसोर्स बुक फ़ॉर टीचर्स*. रा. शै. अ. प्र. प., नयी दिल्ली.
- जॉनसन, डब्ल्यू डेविड और रोज़र टी. जॉनसन. 2005. *असेंशियल्स कम्पोनंट्स ऑफ़ पीस एजुकेशन — थ्योरी इनटु प्रैक्टिस*. 44 (4), पृ. 280–292. लॉरेंस अर्लबॉम असोसिएट्स, पब्लिशर्स माहवाह, न्यू जर्सी.

# गतिविधि आधारित विज्ञान शिक्षण आवश्यक क्यों?

संतोष कुमार मिश्रा\*

गतिविधि आधारित विज्ञान शिक्षण, विज्ञान शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। प्रायोगिक गतिविधियों से विद्यार्थियों को रुचिपूर्ण तरीके से सीखने में मदद मिलती है। गतिविधि आधारित विज्ञान शिक्षण में वर्तमान समय में चुनौतियाँ तो हैं, लेकिन उनका समाधान भी है। आवश्यकता इस बात की है कि विज्ञान शिक्षक इन चुनौतियों का समाधान स्वयं ही करें। प्रायोगिक कार्य में 'हैंड्स ऑन' एवं 'माइंड्स ऑन', दोनों ही होते हैं अर्थात् प्रयोग करते समय विद्यार्थियों का शरीर एवं दिमाग, दोनों सक्रिय होते हैं। इस शोध पत्र में शोधक द्वारा शोध से प्राप्त परिणाम प्रस्तुत किए गए हैं। इस शोध में शोधक ने 'पुष्प की संरचना' प्रकरण लेकर कक्षा 7 के विद्यार्थियों को चार समूहों में वर्गीकृत कर पढ़ाया; दूसरा, विभिन्न शासकीय विद्यालयों के 100 विद्यार्थियों से प्रयोगात्मक शिक्षण/गतिविधि आधारित शिक्षण के महत्व के संबंध में प्रश्न किए गए एवं उनके विचार लिए गए; तीसरा, मोबाइल लैब टीम के सदस्य के रूप में भ्रमण के दौरान विभिन्न शासकीय विद्यालयों के कक्षा 9 एवं 10 तथा कक्षा 6 से 8 तक के 400 विद्यार्थियों से प्रायोगिक कार्य/गतिविधि के संबंध में जानकारी प्राप्त की गई। इस शोध में पाया गया कि स्वयं प्रयोग करने पर 100 प्रतिशत विद्यार्थियों को पुष्प की संरचना समझ में आई। प्रयोगात्मक शिक्षण के संबंध में 100 प्रतिशत विद्यार्थियों ने प्रयोगात्मक गतिविधि को आवश्यक, रुचिकर माना। उन्होंने बताया कि प्रयोग करके जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह स्थायी होता है और वह उन्हें हमेशा याद रहता है। 95 प्रतिशत विद्यार्थियों ने कक्षा 6 से कक्षा 8 तक प्रायोगिक कार्य/गतिविधि आधारित विज्ञान शिक्षण के माध्यम से अध्ययन नहीं किया। विद्यार्थियों ने बताया कि वे प्रायोगिक कार्य न होने की वजह से विषय-वस्तु को सही ढंग से नहीं समझ पाते हैं। इसके अलावा इन विद्यालयों में विज्ञान शिक्षकों की भी कमी है।

## प्रस्तावना

गतिविधि आधारित विज्ञान शिक्षण, विज्ञान शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। प्रायोगिक गतिविधियों से विद्यार्थियों को रुचिपूर्ण तरीके से सीखने में मदद मिलती है। इसमें अनेक गतिविधियाँ होती हैं तथा विभिन्न गतिविधियों का प्रयोग भिन्न-भिन्न उद्देश्यों के लिए किया जाता है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की

रूपरेखा 2005 में, यह कहा गया है कि विज्ञान में नवाचार एवं सृजनशीलता को बढ़ावा दिया जाना चाहिए एवं पृष्ठताछ संबंधी कौशल का समर्थन एवं इसे मजबूत किया जाना चाहिए। प्रायोगिक कार्य में विद्यार्थियों को समूहों में कार्य करना होता है। खोज करने एवं समस्या का समाधान करने से संबंधित प्रयोगों से विद्यार्थियों को सृजनात्मक कार्य करने

\* अध्यापक, शासकीय हाई स्कूल, पुलिस लाइन, शहडोल, मध्य प्रदेश – 484 001

का अवसर मिलता है। गतिविधि आधारित विज्ञान शिक्षण में वर्तमान समय में चुनौतियाँ तो हैं, लेकिन उनका समाधान भी है। आवश्यकता इस बात की है कि हम विज्ञान शिक्षक चुनौतियों का समाधान स्वयं ही करें। गतिविधि/प्रायोगिक कार्य के बिना विज्ञान शिक्षण अधूरा है। गतिविधि की योजना सावधानीपूर्वक बनाई जाए, जिससे इसमें बिना अतिरिक्त समय लगाए गतिविधि संपादित की जा सके। प्रायोगिक कार्य में *हैंड्स ऑन* एवं *माइंड्स ऑन*, दोनों ही होते हैं अर्थात् प्रयोग करते समय विद्यार्थियों का शरीर एवं दिमाग, दोनों सक्रिय होते हैं।

### अनुसंधान कार्यविधि

- सबसे पहले प्रायोगिक रूप से यह जानना जरूरी था कि बच्चे बोर्ड के चित्रों से ज्यादा समझ सकते हैं या स्वयं गतिविधि करके। यह जानने के लिए शोधक ने शासकीय हाई स्कूल, पुलिस लाइन, शहडोल, मध्य प्रदेश के कक्षा 10 के विद्यार्थियों को चार समूहों में विभाजित किया—
  - प्रथम समूह को व्याख्यान विधि से पुष्प की संरचना को समझाया गया।
  - द्वितीय समूह को बोर्ड पर चित्र बनाकर समझाया गया।
  - तृतीय समूह को शिक्षक के द्वारा पुष्प के माध्यम से गतिविधि करके समझाया गया।
  - चौथे समूह के विद्यार्थियों से विभिन्न प्रकार के पुष्प मंगवाकर उसका प्रायोगिक अध्ययन कराया गया एवं पुष्प के विभिन्न भागों को प्रत्यक्ष रूप से दिखाकर समझाया गया।
- प्रयोगात्मक शिक्षण/गतिविधि आधारित शिक्षण के महत्व के संबंध में विद्यालय के विद्यार्थियों

से प्रश्न किए गए एवं उनके विचारों को जाना गया।

- कार्यालय कलेक्टर, जनजातीय कार्य विभाग, शहडोल, मध्य प्रदेश के निर्देशन में दूरस्थ विद्यालयों के लिए गठित मोबाइल लैब के सदस्य के रूप में ज़िले के विभिन्न शासकीय विद्यालयों का भ्रमण शोधक द्वारा किया गया एवं भ्रमण के दौरान विद्यार्थियों से प्रायोगिक कार्य किए जाने के संबंध में जानकारी ली गई। गतिविधि आधारित विज्ञान शिक्षण के लिए चुनौतियों एवं संभावनाओं पर शिक्षकों से विचार-विमर्श भी किया गया तथा स्थितियों का स्वयं आकलन किया गया। इन विद्यालयों में से छह विद्यालयों का चयन शोध हेतु किया गया एवं आँकड़े प्राप्त किए गए।
- शोधक द्वारा मध्य प्रदेश शासन के द्वारा निर्धारित कक्षा 6 से 8 तक के विज्ञान विषय का अध्ययन किया गया एवं उन गतिविधियों की सूची बनाई गई, जिन्हें आसानी से कराया जा सकता है।

### आँकड़ों का संकलन

- कक्षा में विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से 40 विद्यार्थियों को चार समूहों में विभाजित करके उनके सीखने की क्षमता का अध्ययन किया गया। प्राप्त आँकड़े तालिका 1 में दिए गए हैं।
- गतिविधि आधारित विज्ञान शिक्षण के महत्व के संबंध में विद्यार्थियों से प्रश्नावली के माध्यम से प्रश्न किए गए। उनसे प्राप्त आँकड़े तालिका 2 में दिए गए हैं।
- मोबाइल लैब टीम के सदस्य के रूप में भ्रमण के दौरान शासकीय विद्यालयों के कक्षा 9वीं

तालिका 1 — विभिन्न गतिविधियों में सम्मिलित विद्यार्थियों की संख्या एवं समझने वाले विद्यार्थी

क्र. सं.	गतिविधि में सम्मिलित विद्यार्थियों की संख्या	समझने वाले विद्यार्थी
1.	10	व्याख्यान विधि से पढ़ाए जाने पर समझने वाले विद्यार्थी 2
2.	10	बोर्ड पर चित्र बनाकर समझाने पर समझने वाले विद्यार्थी 3
3.	10	शिक्षक के द्वारा गतिविधि करने पर समझने वाले विद्यार्थी 5
4.	10	विद्यार्थियों द्वारा स्वयं प्रयोग करने पर समझने वाले विद्यार्थी 10

तालिका 2 — विद्यार्थियों की प्रयोगात्मक गतिविधि के प्रति प्रतिक्रिया

क्र. सं.	विद्यार्थियों की संख्या जिनका अध्ययन किया गया	विद्यार्थियों की संख्या जिन्होंने प्रयोगात्मक गतिविधि को आवश्यक, मनोरंजनपूर्ण, रुचिकर माना	विद्यार्थियों की संख्या जिन्होंने प्रयोगात्मक गतिविधि को आवश्यक, मनोरंजनपूर्ण, रुचिकर नहीं माना
1.	100	100	00

तालिका 3 — कक्षा 9वीं/10वीं में अध्ययनरत विद्यार्थियों की कक्षा छठी से कक्षा 8वीं तक प्रायोगिक कार्य/गतिविधि में सहभागिता करने के प्रति प्रतिक्रिया

क्र. सं.	अध्ययन किए गए विद्यार्थियों की संख्या	कक्षा 9वीं एवं 10वीं में अध्ययनरत वे विद्यार्थी जिन्होंने कक्षा छठी से कक्षा 8वीं तक प्रायोगिक कार्य/गतिविधि की हैं	कक्षा 9वीं एवं 10वीं में अध्ययनरत वे विद्यार्थी जिन्होंने कक्षा छठी से कक्षा 8वीं तक प्रायोगिक कार्य/गतिविधि नहीं की हैं
1.	400	20	380

एवं कक्षा 10वीं में अध्ययनरत विद्यार्थियों से कक्षा छठी से कक्षा 8वीं तक विज्ञान विषय में प्रायोगिक कार्य/गतिविधि में सहभागिता करने के प्रति प्रतिक्रिया के संबंध में प्राप्त आँकड़े तालिका 3 में दिए गए हैं।

मध्य प्रदेश शासन के द्वारा निर्धारित कक्षा 6 से 8 तक के विज्ञान विषय की पाठ्यपुस्तक के अध्ययन के पश्चात् बनाई गई गतिविधियों की सूची निम्न है, जिन्हें विद्यार्थियों द्वारा स्वयं या शिक्षकों की मदद से आसानी से कराया जा सकता है —

**कक्षा 6** — शाक, झाड़ी एवं वृक्ष में अंतर; पौधे के प्रत्येक भाग के कार्य; पत्ती की संरचना एवं प्रकार; पत्तियों में वाष्पोत्सर्जन; पत्तियों में स्टार्च परीक्षण; जड़ के प्रकार — मूसला एवं रेशेदार जड़; पुष्प की संरचना एवं प्रकार; परावर्तन एवं अपवर्तन; चुम्बक के गुण; दूरी का मापन; वर्मीकम्पोस्टिंग आदि।  
**कक्षा 7** — स्टोमेटा की संरचना; पादप में पोषण — अमरबेल, कवक आदि; आयोडीन परीक्षण; डॉक्टरी थर्मामीटर; अम्ल क्षार परीक्षण — लिटमस परीक्षण; जल का संवहन; पौधों में कायिक प्रवर्धन,

मुकुलन, खंडन; पुष्प की संरचना एवं परागण; लेंस द्वारा बने प्रतिबिंब; प्रिज्म द्वारा प्रकाश का वर्ण विक्षेपण; वनों का महत्व आदि।

**कक्षा 8**—वायु में जलवाष्प की उपस्थिति ज्ञात करना; वायु में कार्बन डाइऑक्साइड की उपस्थिति ज्ञात करना; रासायनिक अभिक्रिया; विस्थापन अभिक्रिया में एक धातु का दूसरे धातु के द्वारा विस्थापन दर्शाना; प्याज़ की कोशिका का अध्ययन करना; प्रकाश के वर्ण विक्षेपण की घटना का अवलोकन करना; लेंस के प्रकार को जानना; उत्तल लेंस के अपवर्तन के पश्चात् प्रकाश की किरणों का अभिसरित होना; चुंबक के गुणों का अध्ययन करना; सोलर कुकर की रचना एवं कार्यप्रणाली समझना; जलीय पारिस्थितिक तंत्र का मॉडल बनाना आदि।

### आँकड़ों का विश्लेषण

विद्यालय स्तर पर गतिविधि आधारित विज्ञान शिक्षण की आवश्यकता, चुनौतियाँ एवं समाधान के लिए प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण निम्नानुसार किया गया है—

- विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से या प्रयोग के द्वारा विद्यार्थियों की सीखने की क्षमता के अध्ययन से प्राप्त आँकड़ों के विश्लेषण से ज्ञात हुआ कि —
  - व्याख्यान विधि से पढ़ाए जाने पर 20 प्रतिशत विद्यार्थियों को समझ में आया।
  - बोर्ड में चित्र बनाकर समझाने पर 30 प्रतिशत विद्यार्थियों को समझ में आया।
  - शिक्षक के द्वारा गतिविधि करने पर 50 प्रतिशत विद्यार्थियों को समझ में आया।

- विद्यार्थियों द्वारा स्वयं प्रयोग करने पर 100 प्रतिशत विद्यार्थियों को समझ में आया।

- गतिविधि आधारित विज्ञान शिक्षण के संबंध में विद्यार्थियों से प्रश्नावली के माध्यम से प्रश्न करने के उपरांत प्राप्त आँकड़ों के विश्लेषण से ज्ञात हुआ कि —

- 100 प्रतिशत विद्यार्थियों ने प्रयोगात्मक गतिविधि को आवश्यक एवं रुचिकर माना। उन्होंने बताया कि प्रयोग करके जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह स्थायी होता है और वह उन्हें हमेशा याद रहता है।

- मोबाइल लैब टीम के सदस्य के रूप में भ्रमण के दौरान शासकीय विद्यालयों के कक्षा 9वीं एवं कक्षा 10वीं में अध्ययनरत विद्यार्थियों से कक्षा छठी से कक्षा 8वीं तक विज्ञान विषय में प्रायोगिक कार्य/गतिविधि में सहभागिता करने के प्रति प्रतिक्रिया के संबंध में प्राप्त आँकड़ों के विश्लेषण से ज्ञात हुआ कि —

- 95 प्रतिशत विद्यार्थियों ने कक्षा 6 से 8 तक प्रायोगिक कार्य/गतिविधि आधारित विज्ञान शिक्षण के माध्यम से अध्ययन नहीं किया।
- केवल पाँच प्रतिशत विद्यार्थियों ने कक्षा छठी से कक्षा 8वीं तक प्रायोगिक कार्य/गतिविधि आधारित विज्ञान शिक्षण के माध्यम से अध्ययन किया।

### निष्कर्ष

विद्यालय में सिखाने को बहुत कुछ है, लेकिन यह विद्यार्थियों तक पूर्ण रूप से नहीं पहुँच पा रहा है। चाहे वह समयभाव के कारण हो अथवा संसाधनों की या

रुचि की कमी के कारण। जो प्रयास कक्षा शिक्षण में होने चाहिए, वह पूर्णतः नहीं हो पा रहे हैं। सबसे पहले बच्चे के पूर्व-ज्ञान का सम्मान करते हुए पूर्व निहित ज्ञान के आधार का प्रयोग कर आगे बढ़ा जाए। इस शोध के आँकड़ों के विश्लेषण के आधार पर प्राप्त निष्कर्ष निम्नानुसार हैं —

1. प्रयोग के द्वारा विद्यार्थियों की सीखने की क्षमता के अध्ययन से प्राप्त आँकड़ों के विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्ष —

- विद्यार्थियों के द्वारा स्वयं गतिविधि करने पर शत-प्रतिशत विद्यार्थियों को समझ में आया। स्वयं करके सीखने से विद्यार्थियों को सबसे ज्यादा याद रहा। शिक्षण की अन्य विधियों से अध्यापन करने पर विद्यार्थियों को ज्यादा समझ में नहीं आया। स्थायी ज्ञान विद्यार्थियों को तभी प्राप्त होता है जब वे स्वयं करके सीखते हैं। अतः विद्यालय स्तर पर विद्यार्थियों को आधारभूत ज्ञान देने के लिए उन्हें गतिविधि आधारित विज्ञान शिक्षण कराना अत्यंत आवश्यक है।

2. गतिविधि आधारित विज्ञान शिक्षण के संबंध में विद्यार्थियों से प्रश्नावली के माध्यम से प्रश्न करने के उपरांत प्राप्त आँकड़ों के विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्ष —

- शत-प्रतिशत विद्यार्थियों को प्रयोगात्मक गतिविधि मनोरंजनपूर्ण लगी। प्रयोगात्मक गतिविधि के द्वारा विद्यार्थियों को खेल-खेल में स्थायी ज्ञान प्राप्त होता है।
- विद्यार्थियों को प्रयोग करना, गतिविधि करना मनोरंजनपूर्ण लगता है। उन्हें गतिविधि करना नीरस नहीं लगता है। जो विद्यार्थी

परंपरागत व्याख्यान विधि में रुचि नहीं लेते थे, वे विद्यार्थी भी गतिविधियों में उत्साह के साथ भाग लेते हैं एवं गतिविधि उपरांत पूछे गए प्रश्नों का उत्तर भी देते हैं।

- विज्ञान के प्रति विद्यार्थियों में रुचि विकसित करने के लिए गतिविधि आधारित विज्ञान शिक्षण अत्यंत आवश्यक है।

3. मोबाइल लैब टीम के सदस्य के रूप में भ्रमण के दौरान शासकीय विद्यालय के विद्यार्थियों से कक्षा 6 से कक्षा 8 तक विज्ञान विषय में प्रायोगिक कार्य/गतिविधि में सहभागिता करने के प्रति प्रतिक्रिया के संबंध में प्राप्त आँकड़ों के विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्ष —

- कक्षा 8वीं तक के 95 प्रतिशत विद्यार्थियों ने प्रायोगिक कार्य/गतिविधि नहीं की। कक्षा 8वीं तक विद्यार्थियों को अधिकांश विद्यालयों में प्रायोगिक ज्ञान नहीं दिया गया। उन्हें अत्यंत सरल गतिविधि भी नहीं कराई गई। गतिविधि आधारित विज्ञान शिक्षण न होने की वजह से विद्यार्थी विषय-वस्तु को सही ढंग से नहीं समझ पाते हैं।
- यही विद्यार्थी जब उच्च कक्षाओं में पहुँचते हैं, तो उन्हें जो छोटी-छोटी जानकारी होनी चाहिए, वह नहीं होती है।
- इस स्तर के प्रायोगिक कार्य/गतिविधि कक्षा में ही आसानी से कराए जा सकते हैं। पृथक से लैब यदि नहीं है, तो भी प्रायोगिक कार्य/गतिविधि बिना किसी बाधा के संपन्न कराए जा सकते हैं। अतः विषय-वस्तु के स्थायी ज्ञान के लिए गतिविधि आधारित शिक्षण अत्यंत आवश्यक है। सभी विद्यालयों

- में प्रयोग/गतिविधि के द्वारा अध्यापन कार्य कराया जाना आवश्यक है।
4. कक्षा 6 से कक्षा 8 तक के विज्ञान विषय के अध्ययन के पश्चात् पहचाने गए प्रयोगों/ गतिविधियों की सूची —
- पुस्तकों में दी गई अधिकांश गतिविधियाँ सरल हैं। इन गतिविधियों के माध्यम से यदि शिक्षण कार्य कराया जाए, तो बच्चों को प्राप्त ज्ञान स्थायी होगा एवं विद्यार्थियों को विज्ञान विषय रोचक लगेगा।
  - विज्ञान शिक्षा की नींव, कक्षा 6 से कक्षा 8 के लिए विज्ञान विषय की गतिविधियों के लिए अलग से एक पुस्तिका या नोटबुक तैयार की जाए एवं सप्ताह में एक दिन बच्चों को प्रयोग कार्य अवश्य कराया जाए एवं उसे नोटबुक में लिखवाया जाए।
  - गतिविधि आधारित विज्ञान शिक्षण की लगातार मॉनिटरिंग की जाए।
  - गतिविधि आधारित विज्ञान शिक्षण के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जाए।

### संदर्भ

- मध्य प्रदेश राज्य शिक्षा केंद्र. 2018. *विज्ञान*, कक्षा 6. मध्य प्रदेश राज्य शिक्षा केंद्र, भोपाल, मध्य प्रदेश.
- . 2018. *विज्ञान*, कक्षा 7. मध्य प्रदेश राज्य शिक्षा केंद्र, भोपाल, मध्य प्रदेश.
- . 2018. *विज्ञान*, कक्षा 8. मध्य प्रदेश राज्य शिक्षा केंद्र, भोपाल, मध्य प्रदेश.
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. 2006. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005*. रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली.

# विज्ञान उपलब्धि परीक्षण निर्माण तथा मानकीकरण

सुमित गंगवार\*  
शिरीष पाल सिंह\*\*

उपलब्धि परीक्षण के द्वारा अधिगम के उद्देश्यों की प्राप्ति तथा विद्यार्थियों की प्रगति की जाँच की जाती है। उपलब्धि परीक्षण की सहायता से ही किसी व्यक्ति विशेष द्वारा किसी विषय में प्राप्त ज्ञान का आकलन किया जाता है। इस शोध कार्य का उद्देश्य कक्षा 9 के विद्यार्थियों का विज्ञान विषय में ज्ञान तथा प्रगति के आकलन के लिए विज्ञान उपलब्धि परीक्षण का निर्माण एवं मानकीकरण करना था। शोधक द्वारा इस शोध पत्र में विज्ञान उपलब्धि परीक्षण के निर्माण की प्रक्रिया तथा उसके मानकीकरण के चार चरणों — नियोजन, निर्माण, परीक्षण के एकांशों का लेखन, परीक्षण के एकांशों का गुणात्मक एवं मात्रात्मक मूल्यांकन तथा परीक्षण की विश्वसनीयता एवं वैधता का निर्धारण व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया गया है।

विद्यार्थियों के निष्पादान को जाँचने के लिए कई मनोवैज्ञानिक विधियाँ एवं परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है, जिनमें से उपलब्धि परीक्षण एक ऐसा ही मनोवैज्ञानिक परीक्षण है (सिंह, 2015)। उपलब्धि परीक्षण में किसी निश्चित कार्यक्षेत्र में विद्यार्थियों द्वारा अर्जित किए गए ज्ञान एवं कौशल को मापा जाता है (गे, 2013)। उपलब्धि किसी दिए गए कार्य में निपुणता या प्रवीणता प्राप्त करना कहलाती है, यह किसी व्यक्ति का किसी विशेष कार्य अथवा ज्ञान के क्षेत्र में स्वामित्व को दर्शाती है। उपलब्धि परीक्षण यह ज्ञात करने के लिए उपयोग किया जाता है कि व्यक्ति ने क्या और कितना सीखा तथा वह

उस कार्य को कितनी भली-भाँति कर लेता है। किसी भी व्यक्ति की उपलब्धि का आकलन करने वाले उपकरण को वस्तुनिष्ठ, विश्वसनीय तथा वैध होना चाहिए। उपलब्धि परीक्षण के मुख्यतः चार प्रकार— योगात्मक, रचनात्मक, निदानात्मक तथा स्थान होते हैं।

यह शोध पत्र कक्षा 9 के विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में उपलब्धि का आकलन करने हेतु शोधक द्वारा विकसित विज्ञान उपलब्धि परीक्षण के निर्माण की प्रक्रिया पर आधारित है। विज्ञान उपलब्धि परीक्षण के निर्माण के लिए शोधक द्वारा माध्यमिक शिक्षा परिषद्, प्रयागराज द्वारा अनुमोदित कक्षा 9

\* शोधार्थी, शिक्षा विभाग, शिक्षा विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र – 442 001

\*\* एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, शिक्षा विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र – 442001



की विज्ञान विषय की पाठ्यचर्या को आधार माना गया। विज्ञान उपलब्धि परीक्षण का निर्माण करते समय शोधक द्वारा उपलब्धि परीक्षण के निर्माण हेतु उपलब्ध सामग्री के साथ-साथ कक्षा 9 के विज्ञान विषय के विभिन्न संप्रत्ययों का गहराई से अध्ययन किया गया। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य शोधकों द्वारा निर्मित किए गए उपलब्धि परीक्षणों का भी समालोचनात्मक दृष्टिकोण से अध्ययन किया गया। उपलब्ध शोध साहित्य का अध्ययन करके विज्ञान उपलब्धि परीक्षण के उद्देश्य, विषय-वस्तु तथा इसके मूल्यांकन संबंधी विभिन्न आयामों की पहचान कर उनको लिपिबद्ध करके शोध पर्यवेक्षक, विषय-विशेषज्ञों तथा शिक्षक-प्रशिक्षकों से टिप्पणियाँ प्राप्त की गईं। विषय विशेषज्ञों के सुझावों के आधार पर कुछ एकांशों को हटाया गया, साथ ही कुछ नवीन एकांशों को जोड़कर परीक्षण में आवश्यक सुधार किया गया। इस प्रकार उपलब्धि परीक्षण में अंतिम रूप से कुल 70 एकांशों का चयन किया गया।

**विज्ञान उपलब्धि की संक्रियात्मक परिभाषा**  
विज्ञान उपलब्धि, विज्ञान विषय की चयनित विषय-वस्तु (हमारे आस-पास के पदार्थ, परमाणु तथा अणु, जीवन की मौलिक इकाई, ऊतक तथा बल एवं गति के नियम) पर आधारित परीक्षण पर विद्यार्थियों द्वारा अर्जित परिणाम को दर्शाता है।

### परीक्षण निर्माण तथा मानकीकरण के चरण

माध्यमिक स्तर पर कक्षा 9 के विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में उपलब्धि के आकलन के लिए शोधक द्वारा स्वनिर्मित विज्ञान उपलब्धि परीक्षण (SAT) का निर्माण तथा मानकीकरण किया गया। विज्ञान

उपलब्धि परीक्षण के निर्माण एवं मानकीकरण की प्रक्रिया निम्नलिखित चार चरणों में पूर्ण की गई —

1. प्रथम चरण — नियोजन;
2. द्वितीय चरण — निर्माण—परीक्षण के एकांशों का लेखन;
3. तृतीय चरण — परीक्षण के एकांशों का गुणात्मक एवं मात्रात्मक मूल्यांकन; और
4. चतुर्थ चरण — परीक्षण की विश्वसनीयता तथा वैधता का निर्धारण।

### प्रथम चरण — नियोजन

किसी भी परीक्षण का निर्माण करते समय शोधक को विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए कि निर्मित किए जाने वाले परीक्षण द्वारा किसका, क्या, कब और कैसे आकलन किया जाएगा? इन आयामों को ध्यान में रखने पर शोधक एक उत्तम परीक्षण का निर्माण कर सकता है। विज्ञान उपलब्धि परीक्षण के निर्माण के प्रथम चरण में निम्नलिखित उपचरणों को सम्मिलित किया गया था —

*परीक्षण समष्टि तथा परीक्षण उद्देश्य का परिभाषीकरण*  
लक्षित समूह को परिभाषित करने तथा परीक्षण को प्रशासित करने के उद्देश्यों तथा लक्षित समूह के सदस्यों की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए शोधक ने माध्यमिक शिक्षा परिषद्, प्रयागराज द्वारा संबद्ध माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विज्ञान विषय के कक्षा 9 के विद्यार्थियों को परीक्षण समष्टि के रूप में चयनित किया।

*मापन में सम्मिलित बौद्धिक स्तरों का परिभाषीकरण*  
इस शोध कार्य में शोधक द्वारा ज्ञान के ज्ञानात्मक, बोधात्मक तथा क्रियात्मक पक्षों का चयन कर तथा परीक्षण निर्माण के सिद्धांतों को ध्यान में रखकर

विज्ञान उपलब्धि परीक्षण के एकांशों का निर्माण किया गया।

#### उपलब्धि परीक्षण का ब्लू प्रिंट तैयार करना

किसी भी परीक्षण का ब्लू प्रिंट, उस परीक्षण की एक विस्तृत रूपरेखा प्रस्तुत करता है। किसी भी परीक्षण के ब्लू प्रिंट को देखकर उस परीक्षण के उद्देश्य, उसमें सम्मिलित किए गए एकांशों तथा ज्ञान के स्तरों के अनुसार इन एकांशों के वितरण को आसानी से समझा जा सकता है। प्रस्तुत शोध कार्य में शोधक द्वारा परीक्षण में सम्मिलित की जाने वाली पाठ्यवस्तु का विस्तृत अध्ययन कर एवं ज्ञान के स्तरों के आधार पर एकांशों का निर्माण कर उनको ज्ञान के प्रत्येक स्तर के अनुरूप वितरित किया गया। उपलब्धि परीक्षण के ब्लू प्रिंट के प्रथम प्रारूप का विवरण तालिका 1 में दिया गया है।

#### द्वितीय चरण — निर्माण — परीक्षण के एकांशों का लेखन

शोधक द्वारा इस शोध कार्य हेतु कक्षा 9 के विद्यार्थियों की विज्ञान विषय की उपलब्धि के मापन हेतु निर्मित किए गए विज्ञान उपलब्धि परीक्षण में वस्तुनिष्ठ प्रकार के प्रश्नों (बहुविकल्पीय) को

सम्मिलित किया गया, क्योंकि इन प्रश्नों के उत्तरों का मूल्यांकन वस्तुनिष्ठ प्रकार से किया जाता है। बहुविकल्पीय प्रकार के प्रश्नों का प्रशासन सरलता से किया जा सकता है। साथ ही ये विद्यार्थियों में विभेद करने में सक्षम होते हैं। शोधक द्वारा उपलब्धि परीक्षण के प्रथम प्रारूप में 100 बहुविकल्पीय प्रश्नों को सम्मिलित किया गया (तालिका 1 में दर्शाया गया है)। प्रथम प्रारूप की समीक्षा, अवलोकन तथा सुझावों के लिए इसे विषय-विशेषज्ञों को दिया गया तथा उनके द्वारा प्राप्त सुझावों को सम्मिलित करते हुए उपलब्धि परीक्षण के प्रथम प्रारूप में आवश्यक सुधार किया गया।

#### तृतीय चरण—परीक्षण के एकांशों का गुणात्मक एवं मात्रात्मक मूल्यांकन परीक्षण के एकांशों का विषय-विशेषज्ञों द्वारा गुणात्मक मूल्यांकन

शोधक द्वारा तैयार किए गए उपलब्धि परीक्षण के प्रथम प्रारूप को अपने शोध पर्यवेक्षक, शिक्षा जगत के विषय-विशेषज्ञों, विज्ञान विषय के विषय-विशेषज्ञों तथा माध्यमिक स्तर पर अध्यापन कर रहे विज्ञान विषय के शिक्षकों को आलोचनात्मक मूल्यांकन के

तालिका 1 — विज्ञान उपलब्धि परीक्षण का ब्लू प्रिंट (प्रथम प्रारूप)  
एकांशों का उद्देश्य आधारित वितरण

क्र. सं.	विषय वस्तु	ज्ञानात्मक	बोधात्मक	क्रियात्मक	योग
1.	हमारे आस-पास के पदार्थ	10 (50%)	06 (30%)	04 (20%)	20 (20%)
2.	परमाणु तथा अणु	08 (40%)	08 (40%)	04 (20%)	20 (20%)
3.	जीवन की मौलिक इकाई	09 (45%)	08 (40%)	03 (15%)	20 (20%)
4.	ऊर्तक	10 (50%)	05 (25%)	05 (25%)	20 (20%)
5.	बल तथा गति के नियम	08 (40%)	06 (30%)	06 (30%)	20 (20%)
6.	सकल योग	45 (45%)	33 (33%)	22 (22%)	(100%)

लिए दिया गया। जिससे इस बात का पता लगाया जा सके कि उपलब्धि परीक्षण में सम्मिलित किए गए सभी एकांश, संबंधित विषय के उद्देश्यों को पूरा कर रहे हैं या नहीं। विषय-विशेषज्ञों के सुझावों के आधार पर उपलब्धि परीक्षण के अस्पष्ट प्रश्नों की भाषा में आवश्यक सुधार किया गया। परीक्षण में कुछ नवीन प्रश्नों को जोड़ा गया तथा कुछ प्रश्नों को हटाया गया। इस प्रकार उपलब्धि परीक्षण में कुल 70 बहुविकल्पीय प्रश्नों को यादृच्छिक प्रकार से व्यवस्थित करके इसका द्वितीय प्रारूप तैयार किया गया, जिसे तालिका 2 में दर्शाया गया है।

**परीक्षण के एकांशों का मात्रात्मक मूल्यांकन — प्रारंभिक परीक्षण**

विज्ञान उपलब्धि परीक्षण के द्वितीय प्रारूप के एकांशों के मात्रात्मक मूल्यांकन हेतु प्रारंभिक परीक्षण कक्षा 9 के विज्ञान विषय के 90 विद्यार्थियों

के एक ऐसे प्रतिनिधिक न्यादर्श पर किया गया, जिसके सदस्य परीक्षण की विषय-वस्तु की जानकारी तथा समझ रखते थे। विज्ञान उपलब्धि परीक्षण के द्वितीय प्रारूप में कुल 70 प्रश्न थे। प्रत्येक प्रश्न में चार विकल्प (A, B, C, D) दिए गए थे। प्रयोज्य को प्रत्येक प्रश्न को ध्यानपूर्वक पढ़कर उसके नीचे दिए गए चारों विकल्पों में से सही विकल्प का चयन कर उस पर चिह्न लगाना था। विज्ञान उपलब्धि परीक्षण के प्रारंभिक परीक्षण के लिए विद्यार्थियों को कुल 1 घंटा 30 मिनट का समय दिया गया था। परीक्षा की समय-सीमा पूरी होने पर विद्यार्थियों से सभी विज्ञान उपलब्धि परीक्षण प्रपत्र वापस लेकर उनका फलांकन, उत्तर कुंजी की सहायता से किया गया। विद्यार्थियों द्वारा दिए गए प्रत्येक सही उत्तर के लिए एक अंक तथा प्रत्येक गलत उत्तर के लिए शून्य अंक प्रदान किया गया।

**तालिका 2 — विज्ञान उपलब्धि परीक्षण का ब्लू प्रिंट (द्वितीय प्रारूप)**  
**एकांशों का उद्देश्य आधारित वितरण**

क्र. सं.	विषय-वस्तु	ज्ञानात्मक	बोधात्मक	क्रियात्मक	योग
1.	हमारे आस-पास के पदार्थ	06 (42.85%) 1, 2, 5, 6, 9, 10	04 (28.57%) 7, 8, 11, 14	04 (28.57%) 3, 4, 12, 13	14 (20%)
2.	परमाणु तथा अणु	05 (35.71%) 15, 16, 17, 21, 23	05 (35.71%) 18, 20, 22, 26, 28	04 (28.57%) 19, 24, 25, 27	14 (20%)
3.	जीवन की मौलिक इकाई	04 (28.57%) 29, 35, 36, 40	05 (35.71%) 30, 33, 37, 39, 42	05 (35.71%) 31, 32, 34, 38, 41	14 (20%)
4.	ऊतक	05 (35.71%) 43, 44, 49, 53, 54	04 (28.57%) 45, 48, 50, 52, 55	05 (35.71%) 46, 47, 51, 56	14 (20%)
5.	बल तथा गति के नियम	05 (35.71%) 57, 58, 60, 62, 65	04 (28.57%) 61, 63, 64, 68	05 (35.71%) 59, 66, 67, 69, 70	14 (20%)
6.	सकल योग	25 (35.71%)	23 (32.85%)	22 (31.42%)	70 (100%)

**एकांश विश्लेषण**—एकांश का कठिनाई सूचकांक एकांश का कठिनाई सूचकांक स्तर से तात्पर्य विद्यार्थियों के उस अनुपात या प्रतिशत से होता है जो किसी एकांश का उत्तर सही-सही दे पाते हैं। एकांश के कठिनाई स्तर को अंग्रेजी के P अक्षर से संकेतित किया जाता है। यह अनुपात या प्रतिशत जितना अधिक होगा, एकांश को उतना ही आसान समझा जाता है अर्थात् उस एकांश का कठिनाई स्तर कम होता है। किसी भी एकांश के P का अधिकतम मान +1.0 हो सकता है। यह परिणाम उस समय आता है जब किसी एकांश का उत्तर सभी विद्यार्थियों ने सही-सही दिया हो। किसी एकांश का न्यूनतम मान 0 भी हो सकता है और यह उस परिस्थिति में आता है जब सभी उत्तरदाताओं या विद्यार्थियों ने गलत उत्तर दिया हो।

एकांश का कठिनाई स्तर (P) ज्ञात करने का सूत्र निम्नलिखित है—

$$DV(P) = R/N$$

यहाँ,

P = एकांश का कठिनाई स्तर

R = सही उत्तर देने वाले व्यक्तियों/प्रयोज्यों की संख्या

N = विद्यार्थियों/प्रयोज्यों की कुल संख्या

**एकांश की विभेदन शक्ति/विभेदन सूचकांक**

एकांश की विभेदन शक्ति या विभेदन सूचकांक से तात्पर्य एकांश की ऐसी शक्ति से होता है जिसके द्वारा एकांश वैयक्तिक भिन्नता दर्शाता है अर्थात् विभेदन शक्ति वह है जिसके द्वारा एकांश, सफल तथा असफल विद्यार्थी या उत्तरदाता के बीच स्पष्ट विभेद कर पाता है। शोधक द्वारा एकांश की

विभेदन शक्ति या विभेदन सूचकांक का परिकलन निम्नलिखित सूत्र की सहायता से किया गया—

$$DP = CRU - RL/N$$

यहाँ,

DP = एकांश की विभेदन शक्ति

RU = उच्च समूह में सही उत्तरों की संख्या

RL = निचले समूह में सही उत्तरों की संख्या

N = प्रत्येक समूह में उत्तरदाताओं की कुल संख्या

इस शोध कार्य में विज्ञान उपलब्धि परीक्षण के एकांशों की विभेदन शक्ति के परिकलन के लिए शोधक द्वारा सभी 90 उत्तरदाताओं के उत्तर पत्रकों को प्राप्तकों के आधार पर अवरोही क्रम में व्यवस्थित किया गया। उत्तर पत्रकों के व्यवस्थित क्रम के ऊपरी 27 प्रतिशत (25) उत्तर पत्रकों तथा निचले 27 प्रतिशत (25) उत्तर पत्रकों को एकांश की विभेदन शक्ति के सांख्यिकीय परिकलन के लिए उपयोग किया गया। प्रत्येक एकांश पर उच्च समूह में सही प्राप्तकों में से निचले समूहों के सही प्राप्तकों का अंतर ज्ञात कर क्रान्तिक अनुपात के आधार पर इन दोनों समूह के अंतरों की सार्थकता की जाँच कर, उस एकांश की विभेदन शक्ति ज्ञात की गई। प्रत्येक एकांश के प्राप्तकों में जितना अधिक अंतर होता है, वह उतना ही अधिक बेहतर एकांश माना जाता है, क्योंकि यह निम्न समूह तथा उच्च समूह को प्रभावी तरीके से विभेदीकृत कर देता है। यदि किसी एकांश के विभेदन सूचकांक (DI) का मान 0.15 से कम होता है तो उस एकांश की विभेदन शक्ति को कम मानकर इसे परीक्षण से हटा दिया जाता है। एबेल तथा फ्रिसबी (Ebel and Frisbie) द्वारा 1986 में किसी भी एकांश की विभेदन क्षमता को आधार मानते हुए उसके चयन करने अथवा न करने के लिए

तालिका 3 — विभेदन सूचकांक सूची

क्र. सं.	प्रसार (Range)	श्रेणी (ग्रेड) (Grade)	संस्तुति (Recommendation)
1.	> 0.39	उत्कृष्ट (Excellent)	परीक्षण में एकांश को सम्मिलित कर सकते हैं।
2.	0.30–0.39	उत्तम (Good)	एकांश में सुधार अपेक्षित है।
3.	0.20–0.29	औसत (Average)	एकांश की पुनः समीक्षा की आवश्यकता है।
4.	0.00–0.19	खराब (Poor)	एकांश की गहन समीक्षा की आवश्यकता है।
5.	<-0.01	सबसे खराब (Worst)	एकांश को हटा दिया जाए।

तालिका 4 — एकांश विश्लेषण — एकांश कठिनाई मान तथा एकांश विभेदन सूचकांक

क्र. सं.	प्राप्तांक	कठिनाई मान	उच्च समूह में सही उत्तरों की संख्या	निम्न समूह में सही उत्तरों की संख्या	अंतर	विभेदन सूचकांक	टिप्पणी
1.	88	0.97	25	24	01	0.04	अस्वीकृत
2.	78	0.86	25	15	10	0.40	स्वीकृत
3.	64	0.71	21	14	07	0.28	स्वीकृत
4.	88	0.97	25	23	02	0.08	अस्वीकृत
5.	16	0.17	05	05	00	00	अस्वीकृत
6.	83	0.92	25	21	04	0.16	स्वीकृत*
7.	58	0.64	19	15	04	0.16	स्वीकृत*
8.	39	0.43	13	09	04	0.16	स्वीकृत*
9.	60	0.66	24	09	15	0.60	स्वीकृत
10.	44	0.48	24	03	21	0.84	स्वीकृत
11.	76	0.84	25	14	11	0.44	स्वीकृत
12.	20	0.22	11	02	09	0.36	स्वीकृत
13.	68	0.75	22	18	04	0.16	स्वीकृत*
14.	32	0.35	14	08	06	0.24	स्वीकृत
15.	67	0.74	22	11	11	0.44	स्वीकृत
16.	40	0.44	12	09	03	0.12	अस्वीकृत
17.	21	0.23	10	03	07	0.28	स्वीकृत
18.	81	0.90	25	18	07	0.28	स्वीकृत
19.	65	0.72	23	12	11	0.44	स्वीकृत

20.	62	0.68	21	08	13	0.52	स्वीकृत
21.	13	0.14	03	01	02	0.08	अस्वीकृत
22.	34	0.37	14	05	09	0.36	स्वीकृत
23.	47	0.52	16	13	04	0.16	स्वीकृत*
24.	65	0.72	23	16	07	0.28	स्वीकृत
25.	31	0.32	12	03	09	0.36	स्वीकृत
26.	37	0.41	14	08	06	0.24	स्वीकृत
27.	74	0.82	24	15	09	0.36	स्वीकृत
28.	02	0.02	02	00	02	0.08	अस्वीकृत
29.	81	0.90	22	22	00	00	अस्वीकृत
30.	22	0.24	09	02	07	0.28	स्वीकृत
31.	63	0.70	14	17	-03	-0.12	अस्वीकृत
32.	28	0.31	09	03	06	0.24	स्वीकृत
33.	70	0.77	24	15	09	0.36	स्वीकृत
34.	27	0.30	14	03	11	0.44	स्वीकृत
35.	49	0.54	14	16	-02	-0.08	अस्वीकृत
36.	54	0.60	19	12	07	0.28	स्वीकृत
37.	64	0.71	20	15	05	0.20	स्वीकृत
38.	72	0.80	25	13	12	0.48	स्वीकृत
39.	16	0.17	04	01	03	0.12	अस्वीकृत
40.	58	0.64	22	11	11	0.44	स्वीकृत
41.	28	0.31	08	06	02	0.08	अस्वीकृत
42.	37	0.41	21	02	19	0.76	स्वीकृत
43.	71	0.78	23	20	03	0.12	अस्वीकृत
44.	30	0.33	10	06	04	0.16	स्वीकृत*
45.	29	0.32	06	07	-01	-0.04	अस्वीकृत
46.	54	0.60	23	09	14	0.56	स्वीकृत
47.	47	0.52	13	11	02	0.08	अस्वीकृत
48.	32	0.35	12	04	08	0.32	स्वीकृत
49.	39	0.43	12	10	02	0.08	अस्वीकृत

50.	62	0.68	23	14	09	0.36	स्वीकृत
51.	84	0.93	25	21	04	0.16	स्वीकृत*
52.	55	0.61	17	13	04	0.16	स्वीकृत*
53.	54	0.60	22	09	13	0.52	स्वीकृत
54.	31	0.34	17	03	14	0.56	स्वीकृत
55.	62	0.68	18	15	03	0.12	अस्वीकृत
56.	53	0.58	22	08	14	0.56	स्वीकृत
57.	47	0.48	15	04	11	0.44	स्वीकृत
58.	77	0.85	24	16	08	0.32	स्वीकृत
59.	11	0.12	04	01	03	0.12	अस्वीकृत
60.	59	0.65	25	11	14	0.56	स्वीकृत
61.	64	0.71	24	10	14	0.56	स्वीकृत
62.	63	0.70	23	10	13	0.52	स्वीकृत
63.	71	0.78	23	15	08	0.32	स्वीकृत
64.	35	0.38	10	12	-02	-0.08	अस्वीकृत
65.	53	0.58	24	09	15	0.60	स्वीकृत
66.	63	0.70	20	16	04	0.16	स्वीकृत*
67.	51	0.56	20	08	12	0.48	स्वीकृत
68.	46	0.51	18	08	08	0.32	स्वीकृत
69.	06	0.06	00	03	-03	-0.12	अस्वीकृत
70.	07	0.74	25	12	13	0.52	स्वीकृत

\* जिन एकांशों का कठिनाई मान अधिक था जबकि विभेदन क्षमता 0.15–0.20 के बीच थी उन एकांशों में पुनः विषय-विशेषज्ञों की सहायता से आवश्यक सुधार किया गया तथा विज्ञान उपलब्धि परीक्षण में जगह दी गई।

निम्नलिखित विभेदन सूचकांक सूची का प्रतिपादन किया गया जो तालिका 3 में दी गई है।

प्रत्येक एकांश का कठिनाई मान तथा विभेदन सूचकांक का वर्णन तालिका 4 में दिया गया है।

एकांश विश्लेषण के पश्चात् चयनित 51 एकांशों को परीक्षण मूल्यांकन के मानदंडों के अनुसार एक निश्चित क्रम में व्यवस्थित किया गया। विज्ञान उपलब्धि परीक्षण के अंतिम प्रारूप में सबसे

सरल एकांशों को परीक्षण के आरंभ में तथा सबसे जटिल एकांशों को सबसे अंत में रखा गया। इस उपलब्धि परीक्षण में प्राप्तियों का विस्तार (Range) अधिकतम प्राप्तांक 51 तथा न्यूनतम प्राप्तांक 0 था। उपलब्धि परीक्षण के एकांशों के कठिनाई मान तथा एकांश विभेदन सूचकांक का परिकलन करने के पश्चात् उपलब्धि परीक्षण के अंतिम प्रारूप में एकांशों का वितरण तालिका 5 में दिया गया है।

**तालिका 5 — विज्ञान उपलब्धि परीक्षण का अंतिम प्रारूप — एकांशों का उद्देश्य आधारित वितरण**

क्र.सं.	विषय-वस्तु	ज्ञानात्मक	बोधात्मक	क्रियात्मक	योग
1.	हमारे आस-पास के पदार्थ	04 (36.36%)	04 (36.36%)	03 (27.27%)	11 (21.56%)
2.	परमाणु तथा अणु	03 (27.27%)	04 (36.36%)	04 (36.36%)	11 (21.56%)
3.	जीवन की मौलिक इकाई	02 (22.22%)	04 (44.44%)	03 (33.33%)	09 (17.64%)
4.	ऊतक	03 (33.33%)	03 (33.33%)	03 (33.33%)	09 (17.64%)
5.	बल तथा गति के नियम	05 (45.45%)	03 (27.27%)	03 (27.27%)	11 (21.56%)
	सकल योग	17 (33.33%)	18 (35.29%)	16 (31.37%)	51 (100%)

### **चतुर्थ चरण—विज्ञान उपलब्धि परीक्षण की विश्वसनीयता तथा वैधता का निर्धारण**

#### **विज्ञान उपलब्धि परीक्षण की विश्वसनीयता**

विश्वसनीयता किसी भी परीक्षण का एक महत्वपूर्ण गुण होता है। सरल अर्थ में विश्वसनीयता से तात्पर्य परीक्षण के प्राप्तांकों की परिशुद्धता से होता है। वैज्ञानिक अर्थ में विश्वसनीयता से तात्पर्य प्राप्तांकों की संगति से होता है, जो उनकी पुनरुत्पादकता के रूप में दिखाई देती है (सिंह, 2014)। किसी परीक्षण की विश्वसनीयता जितनी अधिक होगी, उससे भविष्य में पुनः प्रशासित करके संगत आँकड़ों को प्राप्त किया जा सकता है। शोधक द्वारा विज्ञान उपलब्धि परीक्षण की आंतरिक संगति विश्वसनीयता (Internal Consistency Reliability of Achievement Test) ज्ञात करने के लिए विभक्तार्द्ध विश्वसनीयता विधि तथा क्रोनबैक अल्फा सूत्र का उपयोग किया गया।

विभक्तार्द्ध विश्वसनीयता विधि में परीक्षण को विषम-सम विधि द्वारा दो बराबर-बराबर भागों में बाँटा गया जिसमें सभी विषम संख्या वाले एकांशों का एक समूह तथा सभी सम संख्या वाले एकांशों

का दूसरा समूह बनाकर दोनों भागों के प्राप्तांकों का परिकलन कर रूलोन/गटमैन सूत्र (Rulon/Guttman's Formula) द्वारा परीक्षण की विश्वसनीयता ज्ञात की गई। जिसका मान 0.89 प्राप्त हुआ, जबकि क्रोनबैक अल्फा सूत्र/कूडर-रिचार्डसन सूत्र (Cronbach's Alpha Formula/Kuder-richardson Formula KR-20) द्वारा परीक्षण की विश्वसनीयता का मान 0.78 प्राप्त हुआ।

#### **विज्ञान उपलब्धि परीक्षण की वैधता**

परीक्षण की वैधता से तात्पर्य इस बात से होता है कि परीक्षण क्या मापता है और कितनी बारीकी से मापता है (एनास्टेसी और उर्विना, 2002)। विज्ञान उपलब्धि परीक्षण के एकांशों के लेखन तथा ब्लू प्रिंट के निर्माण के समय परीक्षण के उद्देश्यों, पाठ्यवस्तु की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए इसकी प्रत्यक्ष या आमुख वैधता (Face Validity) तथा अंतर्विषय वैधता (Content Validity) का निर्धारण किया गया। परीक्षण की आमुख तथा अंतर्विषय वैधता निर्धारित करने के लिए शोधक द्वारा विकसित परीक्षण विज्ञान विषय के विशेषज्ञों, शिक्षक-प्रशिक्षकों तथा माध्यमिक स्तर पर अध्यापन करने वाले शिक्षकों को दिया गया, साथ ही उनसे



एकांशों से संबंधित तथ्यों के ज्ञान के सही-सही मापन और विषय-वस्तु के सभी क्षेत्रों के उचित प्रतिनिधित्व पर विचार-विमर्श भी किया गया। विषय-विशेषज्ञों द्वारा दिए गए सुझावों को ध्यान में रखते हुए परीक्षण के एकांशों की भाषा-शैली, शब्द-संरचना तथा वाक्य-विन्यास में आवश्यक संशोधन किया गया।

### विज्ञान उपलब्धि परीक्षण का शैक्षिक निहितार्थ

इस शोध कार्य में माध्यमिक शिक्षा परिषद्, प्रयागराज द्वारा अनुमोदित कक्षा 9 की विज्ञान विषय की पाठ्यचर्या को आधार मानकर विज्ञान विषय की शैक्षिक उपलब्धि के मापन के लिए विज्ञान उपलब्धि परीक्षण का निर्माण एवं मानकीकरण किया गया, अतः कक्षा 9 के विद्यार्थियों द्वारा विज्ञान विषय में उनके द्वारा अर्जित निपुणता को जानने के लिए

इस परीक्षण का उपयोग किया जा सकता है। इस परीक्षण की सहायता से शिक्षक आसानी से कक्षा के अंदर विद्यार्थियों की विज्ञान विषय की उपलब्धि की तुलना कर किसी विशेष निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं, साथ ही परोक्ष रूप से विद्यार्थियों के बौद्धिक विकास के बारे में एक स्थूल अनुमान लगा सकते हैं। इस उपलब्धि परीक्षण के परीणामों के आलोक में शिक्षक विज्ञान विषय के अध्यापन हेतु प्रयोग में लाई जा रही अपनी शिक्षण नीतियों में उचित एवं धनात्मक संशोधन भी कर सकते हैं। इस शोध कार्य में निर्मित तथा मानकीकृत विज्ञान उपलब्धि परीक्षण अन्य शोधार्थियों के लिए उनके अपने शोध कार्य में उपलब्धि परीक्षण के निर्माण के समय एक आधार प्रस्तुत करने का कार्य करेगा। साथ ही वे इसे अपने शोध कार्य में उपयोग भी कर सकेंगे।

### संदर्भ

- एनास्टेसी. ए और उर्विना, एस. 2002. *साइकॉलॉजिकल टेस्टिंग*. (सातवाँ संस्करण). पियर्सन एजुकेशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली.
- एबेल, आर.एल. और डी.ए. फ्रिसबी. 1986. *असेंशियल्स ऑफ एजुकेशनल मेजरमेंट*. (चतुर्थ संस्करण). प्रेंटिस हॉल, एंजलवुड क्लिप्स.
- गे, एल. आर. 2013. *एजुकेशनल एवैल्युएशन एंड मेजरमेंट कम्पीटेंसिस फॉर एनालिसिस एंड एप्लीकेशन*. चार्ल्स मॉरिल, लंदन.
- चौधरी, एस. और एस. के. त्यागी. 2017. कंस्ट्रक्शन एंड स्टैंडर्डाइजेशन ऑफ अचीवमेंट टेस्ट इन एजुकेशनल साइकॉलजी. *एजुकेशनल क्वैस्ट*. 8 (3), पृ. 817-823.
- सिंह, ए. के. 2014. *मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ*. मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली.
- . 2015. *शिक्षा मनोविज्ञान*. भारती भवन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, पटना.
- सिंह, ए. और डी. यादव. 2018. कंस्ट्रक्शन एंड स्टैंडर्डाइजेशन ऑफ अचीवमेंट टेस्ट इन बायोलॉजी. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ सोशल साइंस*. 8 (3), पृ. 18-27.

# विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का अभिभावकीय प्रोत्साहन एवं अध्ययन आदत के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन

शिखा श्रीवास्तव\*  
किशोर हरिश्चन्द्र माने\*\*

शिक्षा मनुष्य के जीवन को सार्थक दिशा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। विद्यार्थी की शैक्षिक उपलब्धि का निर्धारण तथा उसका अध्ययन, आदतों एवं उसे प्राप्त होने वाले अभिभावकीय प्रोत्साहन से होता है। इसके लिए अन्य कारक भी उत्तरदायी होते हैं, जैसे — मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, पारिवारिक स्थिति आदि। वर्तमान समय में विश्व अधिक प्रतियोगी होता जा रहा है और इसी संदर्भ में प्रत्येक अभिभावक यह चाहता है कि उनके बच्चे सफलता के शीर्ष स्तर पर पहुँचें, परंतु उपलब्धि के उच्च स्तर की इच्छा, बच्चों, शिक्षकों, अभिभावकों तथा विद्यालय पर एक दबाव का निर्माण करती है। अतः बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि से संबंधित कारकों का अध्ययन करना और उन कारकों के प्रभाव को समझना बहुत आवश्यक हो गया है। यह शोध पत्र भी इसी आवश्यकता पर आधारित है। जो शोध की वर्णनात्मक सर्वे विधि पर आधारित है। जिसमें वाराणसी शहर के सी.बी.एस.ई. बोर्ड द्वारा संचालित विद्यालयों में अध्ययनरत कक्षा 11 के सभी विद्यार्थी जनसंख्या के रूप में लिए गए थे। प्रतिदर्श का चयन उद्देश्यपूर्ण-सह-प्रासंगिक प्रतिदर्शन विधि (Purposive-Cum-Convenience) द्वारा किया गया था। प्रदत्त संकलन हेतु अभिभावकीय प्रोत्साहन के मापन हेतु कुसुम अग्रवाल द्वारा निर्मित “अग्रवाल अभिभावकीय प्रोत्साहन मापनी” तथा अध्ययन आदत के मापन हेतु डिम्पल रानी और एम.एल. जैद द्वारा निर्मित “अध्ययन आदत मापनी” का प्रयोग किया गया था। इसके साथ, शोध में विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के रूप में पूर्व परीक्षा (कक्षा 10) में प्राप्त अंकों के प्रतिशत को प्रयुक्त किया गया था। परिणामों के सूक्ष्म अवलोकन से स्पष्ट होता है कि अभिभावकीय प्रोत्साहन एवं अध्ययन आदत, शैक्षिक उपलब्धि से सार्थक रूप से सह-संबंधित हैं।

## प्रस्तावना

शिक्षा एक महत्वपूर्ण मानवीय सृजन एवं परिवर्तन का सशक्त साधन है। मनुष्य शिक्षा के माध्यम से ही मनुष्य बनता है। वर्तमान समय में बच्चे वैसे तो बहुत समझदार होते हैं, परंतु आज की भागदौड़ भरी जिदगी में अभिभावक अपने बच्चों को पर्याप्त समय

एवं ध्यान नहीं दे पाते। अपनी ज़िम्मेदारियों के निर्वहन में वे उनको अच्छे विद्यालय में भेजते हैं, उनकी सभी जरूरतों को पूरा करते हैं और उनको एक बहुमुखी व्यक्ति के रूप में देखना चाहते हैं। परंतु आज के संदर्भ में विद्यालय में संपूर्ण शिक्षा नहीं मिल पा रही है तथा घर पर भी बच्चों की शिक्षा पर ध्यान देना

\* शोधार्थी, शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश – 221 005

\*\* असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश – 221 005

ज़रूरी है। वास्तव में, माता-पिता ही बच्चे के प्रथम शिक्षक होते हैं और बच्चे जैसे ही अपनी शैक्षिक यात्रा आरंभ करते हैं, माता-पिता इस यात्रा के प्रत्येक चरण में मार्गदर्शक का कार्य करते हैं। माता-पिता का प्रोत्साहन बच्चों में छिपी हुई क्षमताओं का पोषण करता है, जो उन्हें जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सफलता प्राप्त करने में सहायक सिद्ध हो सकता है। शैक्षिक उपलब्धि एवं निष्पादन, शिक्षा के महत्वपूर्ण लक्ष्यों में से एक है। विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि माता-पिता के प्रोत्साहन एवं विद्यालयी वातावरण सहित अन्य कारकों से प्रभावित होती है।

लारेंस और बरादी (2016) का मत है कि — “बच्चों के जीवन गठन में अभिभावकीय प्रोत्साहन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, यह उन्हें जीवन की भावी चुनौतियों का सामना करने के योग्य बनाता है। इसमें कई पक्ष सम्मिलित होते हैं, जैसे — विकासात्मक प्रक्रिया की गहन समझ, स्वभाव की समझ, बुद्धि, व्यक्तित्व, क्रियाएँ और समाजीकरण आदि।” इसके अतिरिक्त बिलकिस अब्दुल्ला पुजु (2017) ने अपने शोध पत्र में कहा है कि, वर्तमान समय में विश्व अधिक प्रतियोगी बनता जा रहा है। निजी प्रगति के लिए निष्पादन की गुणवत्ता महत्वपूर्ण कारक बन चुका है। सामान्यतः अभिभावक यह इच्छा करते हैं कि जहाँ तक संभव हो उनके बच्चे सफलता के उच्चतम स्तर को प्राप्त कर सकें। उपलब्धि के उच्च स्तर की इच्छा बच्चों, शिक्षकों, अभिभावकों और विद्यालयों पर एक दबाव का निर्माण करती है। दूसरे शब्दों में, यह पूरी शिक्षा व्यवस्था पर दबाव बनाती है।

आज ऐसा प्रतीत होता है कि संपूर्ण शिक्षा प्रणाली विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर ही

केंद्रित हो गई है। जबकि इसके अलावा भी अन्य कई महत्वपूर्ण पक्ष हैं जिनकी शिक्षा प्रणाली से अपेक्षा की जाती है। इस प्रकार विद्यार्थियों को बेहतर शैक्षिक उपलब्धि हेतु विद्यालयों तथा अभिभावकों को बहुत प्रयास करना पड़ता है। बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि को बेहतर बनाने के लिए वे परामर्शदाता से भी परामर्श लेते हैं और दिन-रात अपने बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि को लेकर चिंतित रहते हैं। अधिगम और अकादमिक निष्पादन किसी एक कारण से निर्देशित नहीं होता, बल्कि कई ऐसे कारक हैं जिनके द्वारा बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि प्रभावित होती है। इन कारकों में व्यक्तित्व, बुद्धि, पारिवारिक पृष्ठभूमि, जेंडर, आयु आदि, इसके साथ ही अर्जित कारक, जैसे — अधिगम शैली और अध्ययन की विधियाँ आदि भी सम्मिलित हैं। वस्तुतः एक विद्यार्थी का पढ़ाई करने का ढंग, तैयारी का स्तर एवं अधिगम युक्तियाँ आदि उपलब्धि स्तर को प्रभावित करते हैं। इस संबंध में मार्क और हावर्ड (2009) का मत है कि विद्यार्थियों की सफलता की जटिलताओं में सबसे सामान्य चुनौती प्रभावकारी या धनात्मक (उत्तम) अध्ययन आदतों की कमी है। उन्होंने आगे बताया कि यदि विद्यार्थी अच्छे अनुशासन के साथ अच्छी अध्ययन आदत का विकास कर सके तो वह अपने शैक्षिक वातावरण में हर क्षेत्र में अच्छा प्रदर्शन कर सकता है।

कैटलन (2013) का भी मत है कि निस्संदेह रूप से विभिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न विधियों से अध्ययन करते हैं और यह आवश्यक नहीं है कि एक विधि एक व्यक्ति के लिए कारगर हो तो वह दूसरे व्यक्तियों के लिए भी कारगर होगी। कैटलन ने 14 सकारात्मक व अच्छी अध्ययन आदतों की पहचान की है, जिन्हें

विद्यार्थी अपनी शैक्षिक उपलब्धि एवं निष्पादन को सुधारने हेतु अपना सकते हैं। इस संबंध में जॉन (2010) के अनुसार नकारात्मक या बुरी अध्ययन आदतें वे हैं जो दोषपूर्ण एवं अनुत्पादक अध्ययन को बढ़ावा देती हैं, जो विद्यार्थी में अवांछनीय व्यवहार परिवर्तन लाती हैं।

अतः उक्त शोध निष्कर्षों से यह स्पष्ट होता है कि अध्ययन आदत एवं शैक्षिक उपलब्धि में संबंध होता है। अतएव शैक्षिक उपलब्धि मात्र अध्ययन आदत से ही नहीं, अपितु अन्य व्यक्तिगत कारकों, सामाजिक कारकों, पारिवारिक कारकों आदि से भी प्रभावित होती है। अतः शैक्षिक उपलब्धि के स्तर को उच्च करने हेतु विभिन्न कारकों से इसके संबंध को समझने की आवश्यकता है।

इस प्रकार उपरोक्त अध्ययनों से यह तथ्य पूर्णतः स्पष्ट होता है कि बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि पर अभिभावकीय प्रोत्साहन एवं अध्ययन आदत का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। अतः इस विषय की महत्ता के कारण शोध अध्ययन हेतु 'उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का अभिभावकीय प्रोत्साहन एवं अध्ययन आदत के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन' समस्या का चयन किया गया।

### अध्ययन के उद्देश्य

इस शोध अध्ययन के उद्देश्य थे —

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों के अभिभावकीय प्रोत्साहन एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य संबंध का अध्ययन करना।
2. उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों की अध्ययन आदत एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य संबंध का अध्ययन करना।

3. उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का अभिभावकीय प्रोत्साहन एवं अध्ययन आदत के सहसंबंध के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन करना।

### शून्य परिकल्पनाएँ

इस शोध अध्ययन की शून्य परिकल्पनाएँ थीं —

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के अभिभावकीय प्रोत्साहन एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य कोई सार्थक संबंध नहीं है।
2. उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की अध्ययन आदत एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य कोई सार्थक संबंध नहीं है।
3. उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन आदत एवं अभिभावकीय प्रोत्साहन से प्राप्त सहसंबंध गुणांकों के मध्य कोई सार्थक अंतर नहीं है।

### शोध अध्ययन विधि

यह शोध, शोध की वर्णनात्मक विधि पर आधारित है। इसमें वर्णनात्मक सर्वे विधि का प्रयोग किया गया था।

### जनसंख्या

वर्तमान शोध हेतु वाराणसी शहर के सी.बी.एस.ई. द्वारा मान्यता प्राप्त विद्यालयों में अध्ययनरत कक्षा 11 के सभी विद्यार्थी जनसंख्या के रूप में लिए गए थे।

### प्रतिदर्श

प्रतिदर्श का चयन उद्देश्यपूर्ण प्रासंगिक प्रतिदर्शन विधि (Purposive-cum-Convenience Method) द्वारा किया गया था।

## अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण

शोध हेतु प्रदत्तों के संकलन हेतु अभिभावकीय प्रोत्साहन के मापन के लिए कुसुम अग्रवाल द्वारा निर्मित “अग्रवाल अभिभावकीय प्रोत्साहन मापनी” तथा अध्ययन आदत के मापन हेतु डिम्पल रानी और एम.एल. जैद द्वारा निर्मित “अध्ययन आदत मापनी” का प्रयोग किया गया था। इसके साथ ही शैक्षिक उपलब्धि के रूप में विद्यार्थियों के पूर्व परीक्षा में प्राप्त अंकों के प्रतिशत को शोध में प्रयुक्त किया गया था।

## आँकड़ों का विश्लेषण, व्याख्या और विवेचन

इस शोध अध्ययन में वाराणसी शहर के उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों को प्रतिदर्श में सम्मिलित किया गया। इसमें मात्र वे विद्यार्थी ही चयनित किए गए जो सी.बी.एस.ई. द्वारा मान्यता प्राप्त विद्यालयों में पढ़ रहे थे। कुल प्रतिदर्श संख्या 100 थी। शोध के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सर्वप्रथम आँकड़ों की प्रकृति को जानना आवश्यक है कि वे सामान्यीकृत रूप से वितरित थे अथवा नहीं।

## उद्देश्य 1 — उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के अभिभावकीय प्रोत्साहन एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य संबंध का अध्ययन करना

इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु शून्य परिकल्पना बनाई गई कि उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के अभिभावकीय प्रोत्साहन एवं शैक्षिक उपलब्धि के

मध्य कोई सार्थक संबंध नहीं है। दोनों चरों के मध्य सहसंबंध ज्ञात करने हेतु पीयरसन सहसंबंध विधि का चयन किया गया। दोनों चरों के मध्य प्राप्त सहसंबंध गणना का विवरण तालिका 2 में दिया गया है।

तालिका 1 से स्पष्ट है कि प्रतिदर्श विद्यार्थियों के अभिभावकीय प्रोत्साहन एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य प्राप्त सहसंबंध गुणांक  $r$  का मान 0.60 है, जो कि परिमित धनात्मक सहसंबंध है तथा यह 0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक सहसंबंध को दर्शाता है, अतः शून्य परिकल्पना स्वीकृत नहीं की जाती है। अभिभावकीय प्रोत्साहन एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य धनात्मक सहसंबंध प्राप्त होने का कारण यह है कि अनुकूलित गृह पर्यावरण में विद्यार्थियों को शिक्षा के क्षेत्र में प्रोत्साहन, शैक्षिक सुविधाएँ, मार्गदर्शन, माता-पिता द्वारा प्राप्त अनुभव आदि उच्चतर शैक्षिक उपलब्धि प्राप्त करने के लिए प्रेरित करते हैं।

इस क्षेत्र में किए गए अन्य शोधों से भी इस शोध अध्ययन के प्राप्त परिणामों की पुष्टि होती है। मंगल सिंह (2016) ने अपने अध्ययन के परिणामों में पाया कि अभिभावकीय प्रोत्साहन एवं शैक्षिक उपलब्धि में धनात्मक सहसंबंध है। इसके अतिरिक्त भावना और मनदीप कौर (2015) ने भी अपने अध्ययन में यह स्पष्ट किया कि अभिभावकीय प्रोत्साहन एवं शैक्षिक उपलब्धि में सकारात्मक सहसंबंध है। इसी

तालिका 1 — उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों के अभिभावकीय प्रोत्साहन एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सहसंबंध

चर	N	सहसंबंध गुणांक 'r'	सहसंबंध की शाब्दिक व्याख्या	सारिणी मान 'r'
अभिभावकीय प्रोत्साहन एवं शैक्षिक उपलब्धि	100	0.60*	परिमित धनात्मक सहसंबंध	$r = .195$

\*0.05 सार्थकता स्तर

संदर्भ में अन्य शोधकों, विलकिस पुजु अब्दुल्ला (2017), निवेदिता और दीपिका (2017), नेगी अंजना और रमा मोखरी (2016), एस.एस. लारेंस और सी. बराठी (2016) ने भी इस तथ्य की पुष्टि की है कि अभिभावकीय प्रोत्साहन एवं शैक्षिक उपलब्धि में धनात्मक सहसंबंध है।

### **उद्देश्य 2—उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की अध्ययन आदत एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य संबंध का अध्ययन करना**

शोध अध्ययन का उद्देश्य — उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की अध्ययन आदत एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सहसंबंध का अध्ययन करना था। जिसके लिए शून्य परिकल्पना “उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की अध्ययन आदत एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सार्थक संबंध नहीं है” बनाई गई तथा दोनों चरों के मध्य सहसंबंध को ज्ञात करने हेतु गुणनफल-आघूर्ण सहसंबंध विधि (Product Moment Correlation Method) का प्रयोग किया गया। प्राप्त परिणामों को तालिका 2 में दिया गया है।

तालिका 2 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि विद्यार्थियों की (N=100) अध्ययन आदत एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य प्राप्त सहसंबंध गुणांक ‘r’ का मान 0.30 है, जो कि परिमित (moderate) धनात्मक सहसंबंध को दर्शाता है। अतः शून्य

परिकल्पना स्वीकृत नहीं की जाती है। अध्ययन आदत एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सकारात्मक सहसंबंध इस बात का संकेत है कि अध्ययन आदत का प्रभाव शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ता है और इसका कारण है कि उत्तम अध्ययन आदत, विद्यार्थी को अध्ययन के लिए प्रोत्साहित करती है तथा उसे उच्च उपलब्धि की प्राप्ति में सहायक होती है। इस शोध परिणाम की भाँति ही कई अन्य शोधकों ने भी अध्ययन आदत एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य धनात्मक सहसंबंध ज्ञात किए। इस श्रृंखला में के.के. झा और वाई भूटिया (2012) ने अध्ययन आदत एवं गणित विषय में उपलब्धि में सार्थक सहसंबंध ज्ञात किया। इसी प्रकार रत्ना गुप्ता (2016), ए.एस.ए. लारेंस (2014), मिगुल, ए. सरना, पाल्ल्यूश, सी. के. (2015), एवेल उजू एफ और ओलोफू पॉल, ए. (2017), कौर अमनदीप पठानिया राज (2017) ने भी शोध अध्ययन परिणामों में इस तथ्य की पुष्टि की है कि अध्ययन आदत एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सार्थक सहसंबंध होता है।

### **उद्देश्य 3—उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का अभिभावकीय प्रोत्साहन एवं अध्ययन आदत के सहसंबंध का तुलनात्मक अध्ययन करना**

इस अध्ययन के संदर्भ में अभिभावकीय प्रोत्साहन एवं अध्ययन आदत का शैक्षिक उपलब्धि से प्राप्त

**तालिका 2— उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों के अध्ययन आदत एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सहसंबंध**

चर	N	सहसंबंध गुणांक ‘r’	सहसंबंध की शाब्दिक व्याख्या	प्राप्त सारिणी मान ‘r’
अध्ययन आदत एवं शैक्षिक उपलब्धि	100	0.30*	परिमित धनात्मक सहसंबंध	r = .195

\*0.05 सार्थकता स्तर

सहसंबंध गुणांक के अंतर की सार्थकता जानने हेतु परिकल्पना बनाई गई कि, “उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का अभिभावकीय प्रोत्साहन एवं अध्ययन आदत से प्राप्त सहसंबंध गुणांकों के मध्य कोई सार्थक अंतर नहीं है।” इस परिकल्पना के परीक्षण हेतु सर्वप्रथम तीनों चरों के मध्य सहसंबंध गुणांक की गणना की गई तत्पश्चात् टी-परीक्षण क्रियान्वित किया गया जिसका विवरण तालिका 3 में दिया गया है।

तालिका 3 के अवलोकन से स्पष्ट है कि अभिभावकीय प्रोत्साहन एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य प्राप्त सहसंबंध गुणांक का मान 0.61 है। अध्ययन आदत एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य प्राप्त सहसंबंध गुणांक का मान 0.30 है तथा अभिभावकीय प्रोत्साहन एवं अध्ययन आदत के मध्य प्राप्त सहसंबंध गुणांक का मान 0.49 है तथा इन तीनों सहसंबंध गुणांकों के मध्य प्राप्त ‘t’ का मान 1.53 है, जो 0.05 सार्थकता स्तर पर आवश्यक न्यूनतम ‘t’-मान 1.98 से कम है। अतः यह स्पष्ट है कि शैक्षिक उपलब्धि का अन्य दो चरों, अध्ययन आदत एवं अभिभावकीय प्रोत्साहन के साथ प्राप्त सहसंबंध गुणांक के मध्य कोई सार्थक अंतर नहीं है। अतः शून्य परिकल्पना को स्वीकृत किया जाता

है। अतः यह स्पष्ट है कि शैक्षिक उपलब्धि के साथ अभिभावकीय प्रोत्साहन एवं अध्ययन आदत का लगभग समान सहसंबंध है।

इस प्रकार उपर्युक्त विश्लेषण एवं विवेचन से स्पष्ट है कि अभिभावकीय प्रोत्साहन एवं अध्ययन आदत शैक्षिक उपलब्धि के निर्धारक तत्व हैं और दोनों से विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का धनात्मक सहसंबंध है। इसके साथ ही परिणामों से यह भी स्पष्ट है कि शैक्षिक उपलब्धि का संबंध अभिभावकीय प्रोत्साहन एवं अध्ययन आदत, दोनों से लगभग समान ही है और जो अंतर है भी, वह बहुत कम है जिसे नगण्य माना जा सकता है।

### निष्कर्ष

आँकड़ों के विश्लेषण से परिणामों के संबंध में जो निष्कर्ष प्राप्त हुए, वे इस प्रकार हैं —

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों के अभिभावकीय प्रोत्साहन एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सहसंबंध गुणांक का मान 0.61 है जो कि परिमित धनात्मक सहसंबंध को दर्शाता है।
2. उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों के अध्ययन आदत एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सहसंबंध गुणांक का मान 0.30 है जो

तालिका 3 — अभिभावकीय प्रोत्साहन, अध्ययन आदत एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य प्राप्त सहसंबंध गुणांकों के अंतर की सार्थकता

N	अभिभावकीय प्रोत्साहन एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सहसंबंध	अध्ययन आदत एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सहसंबंध	अभिभावकीय प्रोत्साहन एवं अध्ययन आदत के मध्य सहसंबंध	‘t’ मान	‘t’ का क्रांतिक मान
100	0.61*	0.30*	0.49*	1.53*	1.98

\*0.05 सार्थकता स्तर

कि दोनों चरों के मध्य धनात्मक सहसंबंध को दर्शाता है।

3. शैक्षिक उपलब्धि का अन्य दो चरों, अध्ययन आदत एवं अभिभावकीय प्रोत्साहन से लगभग समान सहसंबंध है।

अतः परिणामों के सूक्ष्म अवलोकन से स्पष्ट होता है कि निर्धारित शैक्षिक उपलब्धि, अभिभावकीय प्रोत्साहन एवं अध्ययन आदत से सार्थक रूप से एवं सकारात्मक रूप से सहसंबंधित है।

### शैक्षिक निहितार्थ

1. इस शोध अध्ययन के परिणामों से स्पष्ट है कि अभिभावकीय प्रोत्साहन एवं अध्ययन आदत शैक्षिक उपलब्धि से सहसंबंधित है। अतः विद्यालय प्रबंधक, अभिभावक तथा शिक्षक इस अध्ययन के परिणामों का लाभ उठाकर, विद्यार्थियों की अध्ययन आदत एवं शैक्षिक उपलब्धि में सुधार करने का प्रयास कर सकते हैं।
2. विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में वृद्धि करने के लिए उन्हें शिक्षकों अथवा विशेष परामर्शदाता के द्वारा उचित निर्देशन प्रदान करना चाहिए। जिससे वे अच्छी अध्ययन आदतों का

विकास कर सकें और अकादमिक सफलता प्राप्त कर सकें।

3. विद्यार्थियों की अध्ययन आदत को सुधारा जा सकता है। अतः इसके सुधार हेतु शिक्षकों को विद्यार्थियों को इस प्रकार के कार्य देने चाहिए, जिसे वे स्वयं करके सीखें तथा उनमें पुस्तकालय जाने की प्रवृत्ति को विकसित करने का प्रयास करना चाहिए।
4. शैक्षिक उपलब्धि का अभिभावकीय प्रोत्साहन से गहरा संबंध है। अतः अभिभावक विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि तथा उनकी अध्ययन आदतों के संबंध में सकारात्मक अभिवृत्ति रखते हुए विद्यार्थियों में आत्म-मूल्यांकन की प्रवृत्ति को विकसित करने का प्रयास कर सकते हैं।
5. अभिभावकों तथा शिक्षकों की अति आकांक्षा अभिवृत्ति विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित कर सकती है, अतः अभिभावकों तथा शिक्षकों, दोनों को विद्यार्थियों की रुचि और उनकी क्षमता को ध्यान में रखकर उनसे अपेक्षा करनी चाहिए।

### संदर्भ

- एबेल, उजू एफ और ओलोफू पॉल, ए. 2017. स्टडी हैबिट एंड इट्स इम्पैक्ट ऑन सेकंडरी, एकेडमिक परफॉर्मेंस इन बायोलॉजी इन द फेडरल कैपिटल टेरीटरी, अंबूजा. *एजुकेशनल रिसर्च एंड रिव्यूज, एकेडमिक जर्नल्स*. वॉल्यूम 12 (10), पृ. 583-588.
- कैटलन, एफ. 2013. *कॉलेज स्टडी हैबिट्स न्यूज़*. 12/03/2016 को [www.studymode.com](http://www.studymode.com) से लिया गया है.
- कौर, अमनदीप और आर. पठानिया. 2017. स्टडी हैबिट्स एंड एकेडमिक परफॉर्मेंस अमंग लेट एडोलसेंस. *स्टडी ऑन होम एंड कम्युनिटी साइंस*. वॉल्यूम 9 इश्यू 1. 21/11/2017 को [www.tandfonline.com](http://www.tandfonline.com) से लिया गया है.



- गुप्ता, रत्ना. 2016. माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता पर पारिवारिक वातावरण के प्रभाव का अध्ययन. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एप्लाइड रिसर्च*. 2 (9), पृ. 252–256.
- जॉन, एम. 2010. स्टूडेंट्स स्टडी हैबिट्स एंड स्टाइल्स. 12/3/2016 को [www.worldwidelearn.com](http://www.worldwidelearn.com) से लिया गया है.
- झा, के.के. और वाई भूटिया. 2012. माध्यमिक विद्यालयों में गणित के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों और उपलब्धि. एडुट्रैक. नीलकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली.
- निवेदिता और दीपिका. 2017. स्टडी ऑफ पेरेंटल इंकरेजमेंट इन रिलेशन टू एकेडमिक अचीवमेंट ऑफ यूनिवर्सिटी स्टूडेंट्स. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च इन सोशल साइंस*. वॉल्यूम 4, इश्यू 6. पृ. 64–72.
- नेगी, अंजना और रमा मोखरी. 2016. पेरेंटल इंकरेजमेंट एंड एकेडमिक अचीवमेंट अमंग एडोलसेंस. *रिमार्किंग*. वॉल्यूम 2, इश्यू 8. पृ. 80–82.
- पुजु, बिलकिस अब्दुल्ला. 2017. एकेडमिक अचीवमेंट ऑफ एडोलसेंस इन रिलेशन टू पेरेंटल इंकरेजमेंट. *द इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इंडियन साइकोलजी*. वॉल्यूम 4, इश्यू 3. पृ. 15–22.
- भावना और मंदीप कौर. 2015. एकेडमिक अचीवमेंट ऑफ एडोलसेन्ट्स इन रिलेशन टू पेरेंटल एंकरेजमेंट. *जर्नल ऑफ रिसर्च एंड मेथड इन एजुकेशन*. वॉल्यूम 5, इश्यू 3, मई-जून 2015. पृ. 30–36.
- मार्क, ए. और सी. हावर्ड. 2009. *हाऊ टू स्टडी साइको साइंस*. 20 (4), पृ. 516–522
- लारेंस, ए. एस. 2014. रिलेशनशिप बिट्वीन स्टडी हैबिट्स एंड एकेडमिक एचीवमेंट ऑफ हायर एंड सेकंडरी स्कूल स्टूडेंट्स. *इंडियन जर्नल ऑफ एप्लाइड रिसर्च*. वॉल्यूम 4, इश्यू 6. जून 2014. पृ. 143–145.
- लारेंस, ए. एम. और सी. बराढ़ी. 2016. पेरेंटल एन्करेजमेंट इन रिलेशन टू एकेडमिक अचीवमेंट ऑफ हायर सेकंडरी स्कूल स्टूडेंट्स. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस रिसर्च एंड इन्नोवेटिव आइडियाज़ इन एजुकेशन*. वॉल्यूम 2, इश्यू 6, पृ. 1234–1239.
- सरना, ए मिगुल और पॉल्ल्यूश, सी. के. 2015. इन्फ्लूएंस ऑफ स्टडी हैबिट्स ऑन एकेडमिक परफॉर्मेंस ऑफ इंटरनेशनल कॉलेज स्टूडेंट्स इन शंघाई. *हायर एजुकेशन स्टडीज़*. वॉल्यूम 5, नं. 4, पृ. 42–55. कनेडियन सेंटर ऑफ साइंस एंड एजुकेशन.
- सिंह, मंगल. 2016. रिलेशनशिप बिट्वीन एकेडमिक अचीवमेंट एंड पेरेंटल इंकरेजमेंट. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इंजीनियरिंग साइंस एंड कम्प्यूटिंग*. वॉल्यूम 6, इश्यू 4, पृ. 3695–3698.

# संस्कृत भाषा शिक्षण की एक नयी दृष्टि निर्माणवाद

रंजय कुमार पटेल\*

शिरीष पाल सिंह\*\*

---

निर्माणवाद, शिक्षा के क्षेत्र में एक 'नया दर्शन' है। यह सीखने का एक प्राकृतिक या स्वाभाविक सिद्धांत है। निर्माणवाद वह शक्ति है जिसके द्वारा शिक्षा के विभिन्न पहलुओं के आधार पर रचनात्मक अधिगम किया जा सके। जनसाधारण में यह मिथ्या धारणा बनी हुई है कि संस्कृत भाषा एक अत्यधिक कठिन भाषा है, बिना रटे उसका ज्ञान प्राप्त करना असंभव है। संसार में ऐसी कोई भाषा नहीं है, जिसे सीखना असंभव हो। संस्कृत आयोग (1956 एवं 2012) ने यह सिफारिश की थी कि पारंपरिक संस्कृत ज्ञान को आधुनिक शिक्षा प्रणाली से जोड़ा जाए। इस बिंदु को ध्यान में रखकर इस लेख में 'पुरातन संस्कृत विद्या' एवं 'आधुनिक निर्माणवाद' के बीच एक सेतु का निर्माण करते हुए संस्कृत भाषा शिक्षण को एक नई दृष्टि प्रदान करने का प्रयास किया गया है कि शिक्षक अपनी शिक्षण विधियों में एवं शिक्षार्थी अपने अधिगम व्यवहारों में यत्किंचित परिवर्तन कर सीख सकें।

---

वैदिक काल में हमारे देश में एक समृद्ध शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ। ऐसा कोई देश नहीं है जहाँ ज्ञान के प्रति प्रेम इतने प्राचीन समय में उत्पन्न हुआ हो जितना कि भारत में हुआ है। 'भारत में 2500 ई. पू. से लेकर 500 ई. पू. तक वेदों का वर्चस्व रहा। (लाल, आर.सी. 2015) निस्संदेह भारतीय शिक्षा प्रणाली ने वैदिक काल से वर्तमान काल तक पहुँचने में एक दीर्घकालिक यात्रा पूर्ण की है। परिणामस्वरूप अनेक उतार-चढ़ाव भी देखने को मिलते हैं। विभिन्न काल खंडों में इस संपूर्ण शिक्षा व्यवस्था की जहाँ पर अनेक विशेषताएँ रही हैं, वहीं

पर एक सहचरी के रूप में कतिपय परिसीमाएँ भी एक परंपरा का निर्वहन करते हुए निरंतर चली आती दिखाई पड़ती हैं। कभी शिक्षक को ब्रह्मा, विष्णु, महेश तुल्य बताया गया तो कभी प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षकों को सिर्फ 12 रुपये प्रतिमाह वेतन दिए जाने की सिफारिश की गई। निश्चित रूप से यह कोई व्यक्तिगत टिप्पणी नहीं है, अपितु शिक्षा नीति, 1913 की प्राथमिक शिक्षकों के संदर्भ में की गई सिफारिश है। कभी शिक्षार्थियों से भिक्षाटन कराए गए तो कभी उन्हें निःशुल्क रूप में शिक्षा प्रदान की गई।

---

\* शोधक, शिक्षा विभाग, शिक्षा विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र – 442001

\*\* एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, शिक्षा विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र – 442001

शिक्षा का केंद्र कभी ऋषि आश्रमों को बनाया गया तो कभी बौद्ध मठों को, तो कभी मकतब एवं मस्जिदों को। कभी देशी पाठशालाएँ आर्थिक सहायता न मिलने के कारण बिखर गईं तो कभी वित्तीय सहायता प्राप्त कर सँवर गईं। कभी प्राच्य-पाश्चात्य विवाद हुआ तो कभी इनका पोषण किया गया। कभी धर्मों के आधार पर शिक्षा प्रदान की जाती रही तो कभी आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली का प्रादुर्भाव हुआ। इस प्रकार विभिन्न समयावधि में समय के साथ शिक्षा, शिक्षा का अर्थ, परिभाषा, स्वरूप, शिक्षा के संस्कार, शिक्षा की संरचना, उद्देश्य, पाठ्यचर्या, शिक्षण विधियाँ, शिक्षण संस्थाएँ, शिक्षक एवं शिक्षार्थी का स्थान, शिक्षक-शिक्षार्थी संबंध, अनुशासन, शिक्षा पर नियंत्रण, प्रशासन, वित्त की व्यवस्था, परीक्षाएँ तथा मूल्यांकन के तरीके इत्यादि सब कुछ बदलते रहे। प्रायः संस्कृत भाषा शिक्षण को एक परंपरागत एवं कठोर अनुशासन के रूप में स्वीकार किया जाता रहा है। निर्माणवाद के आधार पर किया गया संस्कृत भाषा शिक्षण रूपी कार्य 'शिक्षक-केंद्रित शिक्षा' के स्थान पर 'विद्यार्थी-केंद्रित शिक्षा' के रूप में परिवर्तित करने का प्रयास किया गया है, जिससे इस विषय की शिक्षण प्रक्रिया भी लचीली, प्रभावी एवं अंतर्क्रियात्मक हो सकेगी। निश्चित रूप से यह लेख शिक्षकों एवं शिक्षार्थियों के मध्य पारस्परिक अंतर्क्रिया को बढ़ावा देगा तथा संस्कृत भाषा के शिक्षण अधिगम के वातावरण को रचनात्मक आधार प्रदान कर सकेगा।

### निर्माणवाद का संप्रत्यय

निर्माणवाद अधिगम प्रक्रिया का एक दर्शन है। शिक्षार्थी अपने अनुभवों से जो कुछ पाते हैं या उसके

आधार पर अभ्यास एवं त्रुटि के माध्यम से जो कुछ भी सीख रहे हैं वह उस ज्ञान का निर्माण कर रहे हैं। निर्माणवाद ज्ञान और अधिगम के विषय में एक सिद्धांत है, जो एक साथ यह बताता है कि क्या जानना है? और कैसे जानना है? निर्माणवाद बाल-केंद्रित शिक्षाशास्त्र का मुख्य आधारभूत सिद्धांत है। इस व्यवस्था में बच्चों के अनुभवों, जिज्ञासाओं और उनकी सक्रिय सहभागिता को केंद्र में रखकर पठन-पाठन हेतु वातावरण तैयार किया जाता है। निर्माणवाद एक दार्शनिक और वैज्ञानिक स्थिति है, जो यह मानता है कि ज्ञान सक्रिय निर्माण की प्रक्रिया के माध्यम से उत्पन्न होता है। निर्माणवादी सिद्धांत यह मानकर चलता है कि अधिगमकर्ता अपने ज्ञान का निर्माण व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से स्वयं करता है। प्रत्येक शिक्षार्थी के पास अपने विचार और कौशल होते हैं, जिसका उपयोग वे पर्यावरण द्वारा उपस्थित समस्याओं का समाधान कर ज्ञान के निर्माण के लिए करते हैं।

बच्चे आस-पास के परिवेश से जुड़े रहते हैं। खोजबीन करना, सवाल पूछना, करके देखना, अपने अर्थ बनाना बच्चों की स्वाभाविक प्रकृति होती है। निर्माणवाद सीखने-सिखाने के इसी सिद्धांत को कहते हैं जिसमें विद्यार्थी अपने ज्ञान की रचना अथवा निर्माण वातावरण से अंतर्क्रिया करते हुए अपने अनुभवों से स्वयं करता है।

### निर्माणवाद तथा वैदिक कालीन शिक्षा

निर्माणवादी शिक्षा 20वीं शताब्दी में हुए शिक्षा आंदोलनों के सामाजिक उद्देश्यों की प्रतिपूर्ति के रूप में अभ्यास की एक कला है। यह शिक्षा ज्ञान की प्रकृति के संदर्भ में एक दार्शनिक दृष्टिकोण है, जिसके अनुसार 'सीखना केवल ज्ञान प्राप्त करना ही

नहीं है, बल्कि एक प्रक्रिया है, जिसमें सीखने वाला स्वयं करके एवं मानसिक रूप से संलग्न रहकर ज्ञान का निर्माण करता है। वह अपने ज्ञान के आधार पर ज्ञात अनुभवों को नए अनुभवों के साथ जोड़कर स्वयं का ज्ञान एवं समझ विकसित करता है तथा उस पर चिंतन करता हुआ अपने ज्ञान को पुनः संगठित करता है। वैदिक काल में शिक्षा आश्रमों के पावन तथा संयमित वातावरण में महर्षियों व आचार्यों द्वारा प्रदान की जाती थी। वैदिक काल में शिक्षा शब्द का प्रयोग ज्ञान, विद्या और विनय आदि के रूप में किया जाता था। सामान्यतः बच्चों का परिवार द्वारा विद्यारम्भ संस्कार और गुरुकुलों में उपनयन संस्कार के बाद शिक्षा प्रदान की जाती थी। परंतु जब शिष्य गुरुकुल शिक्षा पूरी कर लेते थे, तब समावर्तन समारोह होता था। इस समारोह में गुरु शिष्यों को यह उपदेश देते थे कि ‘स्वाध्यायान् मा प्रमदः (तैत्तिरीयोपनिषद्, वल्ली 1, अनुवाक 11)’ अर्थात् स्वाध्याय में कभी प्रमाद (आलस्य) मत करना। इसका अर्थ यह है कि उस काल में जीवन भर स्वाध्याय के द्वारा ज्ञानार्जन किया जाता था। विद्या के विषय में केनोपनिषद् में यह कहा गया है कि — ‘विद्यया विन्दतेऽमृतम्’ अर्थात् ‘विद्या अमृत के समान लाभप्रद है।’ इसके अतिरिक्त विद्या को ‘सा विद्या या आत्मदर्शिका, सा विद्या या ब्रह्मदर्शिका, ज्ञानं मनुजस्य तृतीय नेत्रं, न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते’ इत्यादि रूपों में भी परिभाषित किया गया है।

### निर्माणवाद तथा संस्कृत शिक्षा के उद्देश्य

निर्माणवादी शिक्षा व्यवस्था के सभी उद्देश्य ‘शिक्षक’ अथवा ‘शिक्षण-केंद्रित’ न होकर ‘विद्यार्थी-केंद्रित’ होते हैं। जिसमें विद्यार्थियों की रुचियों, अनुभवों एवं उनके पूर्व-ज्ञान आदि को आधार बनाकर शिक्षा के

उद्देश्य निर्धारित किए जाते हैं। उसे अपने जीवन में अपनी रुचियों एवं स्व-प्रयासों के द्वारा वह जो बनना चाहता है, उसके लिए उपयुक्त अवसर या वातावरण उपलब्ध कराया जाता है। इसी के साथ संस्कृत भाषा शिक्षा में मनुष्य के प्राकृतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक, तीनों पक्षों के विकास पर बल दिया जाता है और इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पाठ्यचर्या में अपरा (भौतिक) एवं परा (आध्यात्मिक), दोनों प्रकार के विषयों एवं क्रियाओं को स्थान दिया जाता है। डॉ. अल्लेकर के शब्दों में, “ईश्वर भक्ति तथा धार्मिकता की भावना, चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, नागरिक तथा सामाजिक कर्तव्यों का पालन, सामाजिक कुशलता की उन्नति और राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण एवं प्रसार, प्राचीन भारत में संस्कृत शिक्षा के मुख्य उद्देश्य एवं आदर्श हैं।” (मित्तल, एस. 2013)

**निर्माणवाद तथा संस्कृत शिक्षा का पाठ्यक्रम**  
निर्माणवादी पाठ्यक्रम ज्ञान को विभिन्न विषयों में विभाजित नहीं करता, अपितु उसे एक एकीकृत संपूर्ण पाठ्यक्रम के रूप में देखता है। इस प्रकार निर्माणवादी पाठ्यक्रम एक समग्र एवं व्यापक अवधारणाओं पर आधारित है। इसी के साथ पाठ्यक्रम की दृष्टि से संस्कृत शिक्षा की दो धाराएँ देखने को मिलती हैं। प्रथम, शास्त्रीय विद्यालय आधारित पाठ्यक्रम, जिनमें प्रथमा (प्रवेशिका), मध्यमा (उपाध्याय), शास्त्री और आचार्य की कक्षाएँ एवं परीक्षाएँ संस्कृत के ही माध्यम से चल रही हैं तथा दूसरा, आधुनिक विद्यालय आधारित पाठ्यक्रम, जिनमें कक्षा छह से संस्कृत भाषा का अध्ययन मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा के माध्यम से कराया जाता है। संस्कृत शिक्षा के पाठ्यक्रमों में वेद, उपनिषद्, साहित्य, चिकित्सा,

गणित, विज्ञान, खगोल विद्या, शस्त्र विद्या, शास्त्र विद्या, भैषज्य विद्या, आयुर्वेद, शल्य क्रिया, युद्ध नीति, न्याय, अध्यात्म, दर्शन, शिक्षा, शांति के लिए शिक्षा, आचार मीमांसा, व्याकरण, ज्योतिष, अभियांत्रिकी, परमाणु शास्त्र, अर्थशास्त्र, शिल्प शास्त्र, वास्तुशास्त्र, योगशास्त्र, कामशास्त्र इत्यादि अनेक विषयों को आधार बनाया जाता है।

### निर्माणवाद तथा संस्कृत शिक्षक

निर्माणवादी शिक्षा में भी शिक्षक की भूमिका ज्ञान के स्रोत से खिसककर सहयोगकर्ता की हो गई है। शिक्षक एक 'सुगमकर्ता' अथवा 'संसाधन प्रदाता' के रूप में बच्चों को सीखने हेतु यथोचित सामग्री एवं सीखने की सहज परिस्थितियों को उपलब्ध कराने और निरंतर उनका सतत एवं व्यापक मूल्यांकन करते हुए, उन्हें अपनी क्षमताओं के विकास के अवसर उपलब्ध कराने की महती भूमिका का निर्वहन करता है। इसमें शिक्षक मार्गदर्शन करने का प्रयास करता है तथा मार्गदर्शन भी वह तभी करता है, जब उसकी जरूरत हो। यह व्यवस्था अप्रासंगिक एवं अनायास मार्गदर्शन का विरोध करती है। इसमें शिक्षक, शिक्षार्थी की स्वतंत्रता एवं नेतृत्व गुणों में अभिवृद्धि करता है तथा शिक्षार्थी की प्रतिक्रिया को पहले प्राथमिकता देता है। वह मैत्रीपूर्ण ढंग से बालक के मनोभावों को समझकर मार्गदर्शन करने वाला, बालक की जिज्ञासा को प्रोत्साहित करने वाला, बालक के विचारों एवं परेशानियों के प्रति संवेदनशील, ज्ञान के निर्माण का सरलीकरण करने वाला, एक मार्गदर्शक, अभिप्रेरक की भूमिका निभाने वाला तथा स्वतंत्रतापूर्वक चिंतन को प्रोत्साहित करने वाला होता है। प्राचीन काल में शिक्षक अपने त्यागमय तथा आदर्शमय जीवन के कारण विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त करते थे। उनका जीवन

अनुकरणीय होता था। संस्कृत शिक्षक को आज भी अपनी वैदिक कालीन परंपरागत प्रतिष्ठा को बनाए रखने के साथ-साथ मैत्रीपूर्ण वातावरण का निर्माण कर एक पथ-प्रदर्शक तथा मार्गदर्शक की भूमिका को अपनाए जाने की आवश्यकता है, जिससे कि संस्कृत भाषा शिक्षण को निर्माणवादी उपागम से जोड़ा जा सके एवं इसे प्रभावशीलता की दृष्टि से लाभान्वित बनाया जा सके।

### निर्माणवाद तथा संस्कृत शिक्षार्थी

निर्माणवादी शिक्षा में विद्यार्थी एक विचारक की भूमिका में होता है तथा समूह में कार्य करने को प्राथमिकता देता है। निर्माणवाद में शिक्षार्थी अत्यंत वैयक्तिक ढंग से ज्ञान का सक्रिय रूप से सृजन एवं पुनर्गठन करता है। इस प्रकार यह क्रिया स्पष्ट करती है कि जानने वाले की अंतर्क्रिया तथा आनुभविक तथ्य द्वारा संसार को जाना जाता है। प्रत्येक शिक्षार्थी अपने स्वयं के लिए ज्ञान का निर्माण करता है। निर्माणवादी परिप्रेक्ष्य के अंतर्गत विद्यार्थी एक कोरी स्लेट नहीं होता, बल्कि वह अपने साथ पूर्व अनुभव लाता है। वह किसी परिस्थिति के सांस्कृतिक तत्व और पूर्व-ज्ञान के आधार पर ज्ञान का निर्माण करता है। संस्कृत भाषा में विद्यार्थियों के लक्षण को इस रूप में अभिव्यक्त किया गया है —

“सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम्।  
सुखार्थी वा त्यजेत् विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत्  
सुखम्॥”

(विदुर नीति, अध्याय 8, श्लोक संख्या 6)

इस प्रकार संस्कृत में भी निर्माणवाद की तरह शिक्षार्थी की सक्रियता तथा निरंतरता को उद्धृत किया गया है। अतः आवश्यकता है कि संस्कृत भाषा शिक्षण में विद्यार्थियों के मार्ग को एक 'सक्रिय

अधिगमकर्ता' के रूप में प्रशस्त किया जाए तथा संस्कृत भाषा शिक्षण में निर्माणवादी उपागम को अपनाया जाए।

### निर्माणवाद तथा संस्कृत भाषा शिक्षण की कक्षा एवं विद्यालय का वातावरण

निर्माणवाद 'अधिकतम अधिगम के लिए वास्तविक आधार' प्रदान करता है। निर्माणवाद यह मानता है कि ज्ञान व्यक्तिगत होता है, जो कि अनुभवों के आधार पर विकसित होता है। सीखने वाला व्यक्ति जब किसी नवीन परिस्थिति के संपर्क में आता है, तब उसके पास जो भी संचित पूर्व-ज्ञान है उसका स्मरण उसे अनायास रूपों में ही हो जाता है। इस प्रकार नवीन ज्ञान की संरचना पूर्व-ज्ञान के एकीकरण से होती है। परिस्थितियाँ एवं वातावरण ज्ञान के निर्माण में सहायक होती हैं। मस्तिष्क जिन सूचनाओं को उपयोगी समझता है, उन्हें ग्रहण करता है एवं जिन सूचनाओं को उपयोगी नहीं समझता, उन्हें सहज ही रूप में अनदेखा कर देता है। नए अनुभवों के आधार पर मस्तिष्क ज्ञान का परीक्षण करता है और आवश्यकता होने पर उनमें सुधार भी करता है। कक्षा में प्रजातांत्रिक वातावरण होता है और विद्यार्थी स्वायत्त होते हैं। इस प्रकार निर्माणवादी संस्कृत भाषा शिक्षण की कक्षा में ज्ञान का निर्माण एक गतिशील, सदैव परिवर्तनशील, अनुभव आधारित एवं आंतरिक माना जाता है।

### निर्माणवाद तथा संस्कृत भाषा शिक्षण एवं अनुशासन

संस्कृत शिक्षा में अनुशासन से तात्पर्य शारीरिक, मानसिक और आत्मिक संयम से लिया जाता है। शारीरिक संयम से तात्पर्य ब्रह्मचर्य व्रत का पालन

करना होता है। मानसिक संयम से तात्पर्य इन्द्रिय निग्रह से होता है तथा आत्मिक संयम से तात्पर्य आत्मा के स्वरूप को पहचानने से होता है। वास्तव में, 'अनुशासन' शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है शासन के पीछे चलना अथवा निर्धारित नियमों के प्रति प्रतिबद्ध होना। संस्कृत भाषा की शिक्षा व्यवस्था में 'प्रभावात्मक' एवं 'आत्मानुशासन' को विशेष महत्व प्राप्त है। यह व्यवस्था 'दण्डात्मक अनुशासन' को अति विपरीत परिस्थितियों में ही स्वीकार करती है। संस्कृत भाषा अपने अधिगमकर्ताओं में अनुशासन की भावना का निर्माण करते हुए यह शिक्षा प्रदान करती है कि—

“अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।

चत्वारि सम्प्रवर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्॥”

(मनुस्मृति, अध्याय 2, श्लोक संख्या 121)

तदनंतर अनुशासन की अगली कड़ी के रूप में यह अभिव्यक्त किया जा सकता है कि —

“ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्माथौ चानुचिन्तयेत्।

कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च॥”

(मनुस्मृति, अध्याय 4, श्लोक संख्या 92)

निर्माणवादी शिक्षण व्यवस्था में भी 'मुक्त अनुशासन' एवं 'आत्म अनुशासन' का मिला-जुला स्वरूप देखने को मिलता है। अनुशासन के विशेष संदर्भ में शिक्षकों की नज़र शिक्षार्थियों पर सदैव बनी रहती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संस्कृत द्वारा स्थापित अनुशासन निर्माणवाद के लिए धरातल का काम करता है।

### निर्माणवादी संस्कृत शिक्षा और अधिगम का आकलन

प्राचीन काल में आज की तरह परीक्षाएँ नहीं होती थीं। सर्वप्रथम तो गुरु ही मौखिक रूप से प्रश्न पूछकर

यह निर्णय करते थे कि शिष्य ने ज्ञान प्राप्त कर लिया है या नहीं। इसके बाद उसे विद्वानों की सभा में उपस्थित किया जाता था। ये विद्वान इन शिष्यों से प्रश्न पूछते थे और संतुष्ट होने पर उन्हें सफल घोषित करते थे। उनका मानना था कि —

“पुस्तकस्था तु या विद्या परहस्तगतं धनम्।

कार्यकाले समुत्पन्ने न सा विद्या न तद्धनम्॥”

(चाणक्य नीतिदर्पण, अध्याय 16, श्लोक संख्या 20)

वर्तमान समय में निर्माणात्मक आकलन को ‘शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009’ द्वारा पाठ्यक्रम के अंश के रूप में बढ़ावा दिया जा रहा है, जो कि छात्रों का चहुँमुखी विकास सुनिश्चित करता है। इस तरह का आकलन सतत होता है और सारे स्कूली वर्ष के दौरान नियमित रूप से किया जाता है। निर्माणात्मक आकलन का अर्थ है ‘प्रत्येक विद्यार्थी के बारे में विविध प्रकार की गतिविधियों से जानकारी एकत्र करना।’ निर्माणवादी अधिगम के आकलन में गतिशील मूल्यांकन की अवधारणा पर जोर दिया गया है, जो पारंपरिक परीक्षणों से अलग शिक्षार्थियों की वास्तविक क्षमता का आकलन करने का एक तरीका है। इस दृष्टिकोण के अनुसार प्रशिक्षकों को निरंतर और संवादात्मक प्रक्रिया के रूप में आकलन करना चाहिए, जो शिक्षार्थी की उपलब्धि तथा सीखने के अनुभव की गुणवत्ता को मापता है। निर्माणवादी अधिगम का आकलन विद्यार्थियों के कार्यों एवं प्रदर्शनों का पर्यवेक्षण करके रूब्रिक्स, स्व-मूल्यांकन, साथी मूल्यांकन तथा पोर्टफोलियो इत्यादि के आधार पर भी किया जाता है। अंततोगत्वा एक वाक्य में बस यही कहा जा सकता है कि निर्माणवादी परिप्रेक्ष्य में निर्माणात्मक आकलन परंपरागत रूपों में न होकर ‘अधिगम के लिए आकलन’ के रूप में होता है, जो

कि संस्कृत भाषा शिक्षण के लिए अत्यंत उपयुक्त होता है।

### निष्कर्ष

अद्यतन शिक्षा जगत में ‘निर्माणवाद’ की अवधारणा को सभी ज्ञानानुशासनो के अधिगम संदर्भों में देखा जा सकता है। खास तौर पर राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में ‘निर्माणवाद’ को एक अनुपम एवं विशिष्ट स्थान प्रदान किया गया है तथा समूचे पाठ्यचर्या की रूपरेखा के विकास में ‘निर्माणवाद’ को आधार बनाया गया है। ‘विद्यार्थी-केंद्रित शिक्षा’ को कई बार ‘निर्माणवाद’ से भी जोड़कर देखा जाता है, जिसे हाल ही में हुई चर्चाओं में ‘शिक्षा का नया दर्शन’ नाम दिया गया है। परिवर्तन की इस धारा में यदि ‘नई शिक्षा’ हो सकती है तो ‘नया शिक्षक’ भी होना ही चाहिए। इसी नई शिक्षा एवं नये शिक्षक की अवधारणा को स्थापित करने के सतत प्रयासों को निर्माणवाद की संज्ञा दी जा सकती है। वर्तमान समय में निर्माणवाद की अवधारणा ने मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, शिक्षा और विज्ञान सहित कई अन्य विषयों को भी प्रभावित किया है।

निस्संदेह इन सभी शैक्षिक विचारों एवं सुझावों के आलोक में निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि निर्माणवादी उपागम आधारित शिक्षण व्यवस्था की प्रासंगिकता एवं प्रभावशीलता स्वतः सिद्ध होती है। वैदिक काल से निरंतर चली आ रही संस्कृत शिक्षा प्रणाली आधुनिक भारतीय शिक्षा प्रणाली के लिए नींव का पत्थर है। उसी के आधार पर आधुनिक शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ है। वैदिक संस्कृत शिक्षा प्रणाली हमारी संस्कृति पर आधारित है और संस्कृति से हम अलग नहीं हो सकते। आज भी हमारी शिक्षा के उद्देश्य मूल रूप से वही हैं जो

वैदिक काल में थे। वैदिक काल की भाँति हम आज भी समस्त ज्ञान-विज्ञान, कौशल और तकनीकी को शिक्षा की पाठ्यचर्या में सम्मिलित करते हैं। आज भी हम शिक्षक और शिक्षार्थियों के बीच मधुर संबंध

स्थापित करना चाहते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि आधुनिक भारतीय शिक्षा प्रणाली और वैदिक संस्कृत शिक्षा प्रणाली के बीच जो अंतर है, वह तो विकास के क्रम में होना स्वाभाविक ही है।

### संदर्भ

- कौण्डिन्यायन, शिवराज आचार्य. 2017. *मनुस्मृति*. चौखम्बा विद्याभवन प्रकाशन, वाराणसी.
- झा, ए. के. 2009. *कन्स्ट्रक्टिविस्ट एपिस्टेमोलॉजी एंड पेडागॉजी इनसाईट इनटू टीचिंग लर्निंग एंड नोविंग*. अटलांटिक प्रकाशन, नयी दिल्ली.
- द्विवेदी, कपिलदेव. 2012. *संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास*. अनिल प्रिंटर्स प्रकाशन, इलाहाबाद. पृ. 117.
- मित्तल, एस. 2013. *संस्कृत शिक्षण*. आर लाल बुक डिपो प्रकाशन, मेरठ.
- लाल, आर. बी. 2015. *भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ*. आर. एस. बुक डिपो प्रकाशन, मेरठ.
- शर्मा, मिहिरचन्द्र. 2015. *चाणक्यनीतिदर्पणः (श्रीचाणक्यविरचितः)*. खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, मुंबई.
- शुक्ल, बी. 1979. संस्कृत आयोग का प्रतिवेदन 1956-57 पर भूमिका. संस्कृतभाषी, 11 मई 2018 को <http://sanskritbhasi.blogspot.in/2017/08/1956-1957.html> से लिया गया है.
- सत्यकेतु. 2012. *विदुर नीति*. (मूलतः भाग उद्योग पर्व, महाभारत). प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली.



# संप्रत्यय संप्राप्ति प्रतिमान द्वारा संस्कृत व्याकरण शिक्षण

अरुणिमा\*

ज्ञान का विकास करना मनुष्य की मूल प्रवृत्ति है। शिक्षा के क्षेत्र में आधुनिक तकनीकी साधनों के प्रयोग ने शिक्षा को आसान कर दिया है। शैक्षिक प्रौद्योगिकी ने शिक्षा में अभूतपूर्व क्रांतिकारी परिवर्तन कर नवीन स्वरूप प्रदान किया है। शिक्षण प्रतिमान भी इनमें से एक है। विद्यार्थियों में संप्रत्ययों की समझ हेतु मनोवैज्ञानिकों ने अलग-अलग शिक्षण प्रतिमानों का निर्माण किया है। शिक्षण प्रतिमान, शिक्षण सिद्धांत विकसित करने की ओर एक कदम है। ये स्वयं सिद्ध कल्पनाएँ होती हैं, जिनका प्रयोग शिक्षक अपने शिक्षण और अधिगम को प्रभावशाली बनाने के लिए करता है। संप्रत्यय संप्राप्ति प्रतिमान (Concept Attainment Model) का उपयोग कर शिक्षक, विद्यार्थियों को संप्रत्ययों (Concepts) की प्रकृति की सही जानकारी प्रदान करता है। इस प्रतिमान का उपयोग नवीन संप्रत्ययों के स्पष्टीकरण तथा व्याख्या करने में किया जाता है। इस प्रतिमान का प्रयोग संस्कृत व्याकरण शिक्षण में भी किया जा सकता है। इस प्रतिमान के माध्यम से संस्कृत व्याकरण के संप्रत्ययों को अधिक रुचिकर एवं सरल तरीके से विद्यार्थियों को समझाया जा सकता है। अतः इस लेख में संप्रत्यय संप्राप्ति प्रतिमान द्वारा संस्कृत व्याकरण के कुछ संप्रत्ययों को पढ़ाने की क्रमबद्ध प्रक्रिया प्रस्तुत की गई है।

‘वि+आ’ उपसर्ग पूर्वक ‘कृ’ धातु से ‘ल्युट् च्’ सूत्र से ल्युट् प्रत्यय होने पर ल्युट् के ‘यु’ को ‘युवोरनाकौ’ सूत्र से अनादेश हुआ, तब नत्व को णत्वादेश होने पर ‘व्याकरण’ शब्द निष्पन्न हुआ। व्याकरण शब्द का अर्थ है, “व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दाः येन तत् इति व्याकरणम्” (भन्साली, 2008) अर्थात् जिसकी सहायता से विभिन्न शब्दों का निर्माण किया जाता है, उसे व्याकरण कहा जाता है।

व्याकरणशास्त्र का विस्तृत एवं सूक्ष्म अध्ययन संस्कृत भाषा में अति प्राचीन काल से ही हो रहा है। वैदिक युग से ही शब्द मीमांसा के विषय में भारतीय

मनीषियों की अनेक व्याख्याएँ प्राप्त हैं। व्याकरण को साङ्गवेद का मुख बताया गया है —

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽयं पठ्यते।

ज्योतिषामयनं चक्षुः निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥

शिक्षा घ्राणन्तु वेदस्य, मुखं व्याकरण स्मृतम् ।

तस्मात्साङ्गमधीत्यैव, ब्रह्मलोके महीयते ॥

व्याकरणशास्त्र पदों की प्रकृति तथा संप्रत्यय आदि का उपदेश देकर पद के स्वरूप का परिचय कराता है और उसके अर्थ का भी निश्चय कराता है। फलतः पदस्वरूप और पदार्थ निश्चय के निमित्त व्याकरण का उपयोग होने से व्याकरण वेद रूपी पुरुष

का 'मुख' माना गया है। छह वेदांगों में व्याकरण वेदाङ्ग ही अन्य सभी वेदांगों को पुष्ट करता है। जिस प्रकार मुख के बिना अर्थात् भोजन आदि को ग्रहण न करने से शरीर की पुष्टि असंभव है, उसी प्रकार वेद रूपी पुरुष के शरीर की रक्षा और स्थिति व्याकरण के बिना असंभव है। अतः संस्कृत के वैदिक और वैदिकोत्तर ग्रंथों के सुचारु ज्ञान के लिए व्याकरण का अत्यधिक महत्व है।

आज के युग में मानव जीवन का प्रत्येक पक्ष वैज्ञानिक खोजों तथा आविष्कारों से प्रभावित है। मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों में ज्ञान का विकास करना है। मनुष्य ने प्रत्येक क्षेत्र में विकास किया है। आज प्रत्येक क्षेत्र कृषि, उद्योग, स्वास्थ्य आदि विज्ञान से सकारात्मक रूप से प्रभावित है। शिक्षा का क्षेत्र भी इसके प्रभाव से मुक्त नहीं रह सका है। रेडियो, टेलीफोन, टेलीविजन, रेडियो-विज्ञान, कंप्यूटर आदि का बढ़ता हुआ उपयोग शिक्षा को तकनीकी के निकट लाता जा रहा है। शिक्षाशास्त्र का ऐसा कोई भी अंग नहीं है, चाहे वह विधियों-प्रविधियों का हो, उद्देश्यों का हो अथवा शिक्षण प्रक्रिया का हो, चाहे शोध का हो, जो तकनीकी से प्रभावित न हुआ हो। विद्यार्थी-शिक्षकों को चाहे सैद्धांतिक ज्ञान से संबंधित समस्या हो, चाहे उनके प्रयोगात्मक शिक्षण के क्षेत्र की समस्या हो, तकनीकी उसमें सहायता देती है। सत्य तो यह है कि तकनीकी विज्ञान इतना समृद्ध और शक्तिशाली होता जा रहा है कि बिना इसका अध्ययन किए, अध्यापकों का शिक्षण संबंधी ज्ञान या उनके परीक्षण तथा प्रशिक्षण में प्राप्त ज्ञान और कौशल अधूरे समझे जाते हैं। शैक्षिक तकनीकी ने शिक्षा के क्षेत्र में पुरानी अवधारणाओं में आधुनिक

संदर्भ के साथ अभूतपूर्व क्रांतिकारी परिवर्तन कर उन्हें एक नवीन स्वरूप प्रदान किया है।

### शिक्षण-प्रतिमान — अर्थ एवं परिभाषाएँ

एक समय था, जब शिक्षा के क्षेत्र में सीखने के सिद्धांतों (Learning Theories) को अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता था। धीरे-धीरे अनुभव तथा शोध के आधार पर यह ज्ञात हुआ कि कक्षा शिक्षण की समस्याओं तथा शैक्षिक वातावरण की समस्याओं के समाधान में सीखने (अधिगम) के सिद्धांत असफल रहे हैं। अतः अब शिक्षाशास्त्री तथा मनोवैज्ञानिक तकनीकी के सिद्धांतों का प्रयोग करते हुए शिक्षण की प्रकृति को समझने का प्रयास कर रहे हैं। फलस्वरूप शिक्षण के सिद्धांतों का विकास हो रहा है, लेकिन अभी तक किसी भी शिक्षण सिद्धांत का प्रतिपादन नहीं हो रहा है। शिक्षण-प्रतिमान तथा शिक्षण-प्रारूप को शिक्षण सिद्धांतों आदि का रूप माना जाता है। इस क्षेत्र में क्रोनबैक (Cronback), गेने (Gagne) आदि का नाम उल्लेखनीय है।

पूर्व सिद्धांतों के आधार पर ही नए सिद्धांतों का प्रतिपादन किया जाता है। शिक्षण तथा अधिगम एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से संबंधित हैं। जहाँ शिक्षण होता है, वहाँ अधिगम होना आवश्यक है, परंतु सीखने के लिए शिक्षण आवश्यक नहीं है। बिना शिक्षण के भी अधिगम होता है। क्रोनबैक (Cronback) का कथन है कि शिक्षण सिद्धांतों का प्रतिपादन अधिगम के सिद्धांतों की सहायता से किया जा सकता है। इस प्रकार शिक्षण सिद्धांतों का आधार अधिगम के सिद्धांत माने जाते हैं, इसके अतिरिक्त गेने (Gagne) का भी विचार है कि, "शिक्षण का मूल आधार अधिगम के प्रकार हैं।" (चौधरी और गुप्ता, 2010)

प्रतिमान की परिभाषा करते हुए भटनागर तथा भटनागर ने लिखा है, “शिक्षण या अधिगम या शिक्षण-अधिगम के सिद्धान्तों का किसी व्यवहार को प्राप्त करने के लिए किसी प्रारूप के अनुसार दी जाने वाली क्रिया प्रतिमान कहलाती है।”

शिक्षण-प्रतिमान, शिक्षण सिद्धांत विकसित करने की ओर एक कदम है। ये शिक्षण सिद्धांतों को वैज्ञानिक आधार प्रदान करते हैं। ये स्वयं सिद्ध कल्पनाएँ होती हैं जिनका प्रयोग शिक्षक अपने शिक्षण और अधिगम को प्रभावशाली बनाने के लिए करता है।

एच. सी. वील्ड के अनुसार, “प्रतिमान, किसी आदर्श के अनुरूप व्यवहार को ढालने की प्रक्रिया को कहा जाता है।” शिक्षण-प्रतिमान, शिक्षण सिद्धांत विकसित करने की ओर पहला कदम है। यह शिक्षण सिद्धांतों को वैज्ञानिक आधार प्रदान करता है। ये स्वयं सिद्ध कल्पनाएँ होती हैं, जिनका प्रयोग शिक्षक अपने शिक्षण को प्रभावशाली बनाने के लिए करता है। हायमन (Hyman) के अनुसार, “शिक्षण प्रतिमान शिक्षण के बारे में सोचने-विचारने की एक रीति है, जो वस्तु के अंतर्निहित गुणों को परखने के लिए आधार प्रदान करती है। प्रतिमान किसी वस्तु को विभाजित तथा व्यवस्थित करके तार्किक रूप में प्रस्तुत करने की विधि है।”

बी. आर. जॉयस ने शिक्षण प्रतिमानों को अनुदेशन प्रारूप (Instructional Designs) कहा है — ‘शिक्षण प्रतिमानों में विशेष उद्देश्य प्राप्ति के लिए परिस्थिति का उल्लेख किया जाता है जिसमें विद्यार्थी व शिक्षक मिलकर इस प्रकार कार्य करते हैं कि उनके व्यवहारों में परिवर्तन लाया जा सके।’ (कुलश्रेष्ठ, 2002)

शिक्षण-प्रतिमान अनुदेशनात्मक नमूने हैं जो शिक्षण उद्देश्यों को प्राप्त करने तथा शिक्षण प्रक्रिया को प्रभावशाली एवं रोचक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। शिक्षण प्रक्रिया में शिक्षण प्रतिमान का विशेष महत्व है —

- शिक्षण प्रक्रिया के तीनों पक्षों — पूर्व शिक्षण अवस्था, अंतर्शिक्षण अवस्था, शिक्षण-उत्तर अवस्था से संबंधित तीनों कार्यों — आयोजन, क्रियान्वयन व मूल्यांकन में शिक्षण-प्रतिमान उचित दिशा-निर्देश प्रदान करते हैं।
- शिक्षण-प्रतिमान कक्षा-कक्ष का उचित शैक्षिक वातावरण बनाने में सहायक होते हैं जिससे ये कार्य सफलतापूर्वक संपन्न किए जा सकें।
- शिक्षण-प्रतिमान पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की सफलतापूर्वक प्राप्ति में बहुत सहायक होते हैं।

### शिक्षण-प्रतिमान का महत्व

सीखने में शिक्षण-प्रतिमानों का निम्नलिखित महत्व है —

- प्रत्येक प्रतिमान कुछ विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक होता है।
- इसका स्वरूप व्यावहारिक होता है और यह सीखने की उपलब्धि संभव करता है।
- यह अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन के लिए उपयुक्त उद्दीपक परिस्थितियों के चयन में सहायक है।
- प्रतिमान में अनेक विधियों, प्रविधियों तथा युक्तियों का प्रयोग किया जाता है।
- यह मूल्यांकन की एक विशिष्ट कसौटी प्रस्तुत करता है और व्यवहार का मूल्यांकन करता है।
- प्रतिमान के द्वारा शिक्षण में सुधार तथा परिवर्तन लाया जाता है।

- शिक्षक के शिक्षण को प्रभावात्मक बनाने के लिए यह बहुत महत्वपूर्ण है।

### शिक्षण-प्रतिमान के तत्व

सिखाने हेतु शिक्षण-प्रतिमानों के चार मौलिक तत्व होते हैं —

1. **उद्देश्य (Focus)** — प्रत्येक शिक्षण-प्रतिमान का कोई उद्देश्य अवश्य होता है, जिसे उसका लक्ष्य बिंदु कहते हैं। इसी लक्ष्य बिंदु को ध्यान में रखकर प्रतिमान को विकसित किया जाता है। दूसरे शब्दों में, शिक्षण-प्रतिमान का उद्देश्य उस बिंदु को कहते हैं जिसके लिए प्रतिमान का विकास किया जाता है।
2. **संरचना (Syntax)** — संरचना से अभिप्राय शिक्षण-प्रतिमानों के उन बिंदुओं से है, जो शिक्षण को विभिन्न अवस्थाओं में निर्धारित लक्ष्यों या उद्देश्यों के अनुसार केंद्रित क्रियाएँ उत्पन्न करते हैं। शिक्षण-प्रतिमान की संरचना से यह पता चलता है की शिक्षण की क्रियाओं, नीतियों, युक्तियों तथा अंतः क्रियाओं को किस प्रकार से क्रमबद्ध किया जाना चाहिए, ताकि वांछित उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके। यह विषय-वस्तु के प्रस्तुतिकरण से संबंधित है।
3. **सामाजिक प्रणाली (Social System)** — प्रत्येक प्रतिमान की अपनी एक सामाजिक प्रणाली होती है जो हमें यह बताती है कि विद्यार्थी और शिक्षकों के मध्य क्रिया तथा अंतः क्रिया का आयोजन किस प्रकार से किया जाना चाहिए, जिससे विद्यार्थियों के व्यवहार पर नियंत्रण रखा जा सके। साथ ही उनमें वांछित परिवर्तन भी लाया जा सके। सामाजिक प्रणाली हमें अभिप्रेरणा देने वाली प्रविधियों के बारे

में भी बताती है। प्रत्येक प्रतिमान यह मानकर चलता है कि प्रत्येक कक्षा एक समाज है और उस समाज के नियंत्रण तथा सुधार के लिए कोई-न-कोई निश्चित प्रकार की सामाजिक प्रणाली अवश्य अपनानी चाहिए, जिससे शिक्षण व्यवस्था सुचारु रूप से चलती रहे।

4. **सहायक प्रणाली (Support System)** — सहायक प्रणाली का संबंध उन सुविधाओं के साथ है जिनके माध्यम से शिक्षक तथा विद्यार्थी शिक्षण को पूर्णता की ओर ले जाते हैं। एक प्रकार से यह मूल्यांकन करता है कि कहाँ तक शिक्षण व्यवह-रचनाएँ तथा युक्तियाँ सफल रही हैं।

### संस्कृत व्याकरण शिक्षण में संप्रत्यय संप्राप्ति प्रतिमान की भूमिका

भाषा वह शक्ति है जिसके माध्यम से हम अपने विचारों से दूसरों को अवगत कराते हैं तथा दूसरों के विचारों को समझते हैं। इस प्रक्रिया में मनुष्य चार क्रियाएँ करता है — श्रवण, कथन, पठन और लेखन। इनमें से श्रवण व पठन अवबोध कौशल के अंतर्गत आते हैं और कथन व लेखन अभिव्यक्ति कौशल के अंतर्गत आते हैं।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में संस्कृत का शिक्षण प्रायः एक प्राचीन, सांस्कृतिक, शास्त्रीय एवं श्रेष्ठ भाषा के रूप में किया जा रहा है। इसका संपूर्ण पाठ्यक्रम तथा शिक्षाविधि का निर्धारण इसी आधार पर हुआ है। संस्कृत शिक्षण के लिए सामान्यतः दो विशिष्ट प्रणालियों का प्रयोग किया जाता है। एक व्याकरण प्रणाली तथा दूसरी व्याकरण अनुवाद प्रणाली। प्रथम प्रणाली का प्रयोग संस्कृत पाठशालाओं में किया जाता है तथा दूसरी प्रणाली का प्रयोग संस्कृत शिक्षा संस्थानों में किया जाता है।

शिक्षा की आज की आवश्यकता है कि इसकी प्रक्रियाओं को प्रभावशाली एवं दक्ष बनाया जाए। दक्षता का अर्थ होता है — शिक्षा प्रक्रिया प्रभावशाली होने के साथ समय, धन एवं ऊर्जा की दृष्टि से मितव्ययी हो। आधुनिक युग तकनीकी विकास एवं क्रांति का युग है। प्रतिदिन नई-नई तकनीकियों तथा माध्यमों का विकास किया जा रहा है। माध्यमों के विकास ने विश्व की भौतिक दूरी को कम कर दिया है अथवा विश्व को बहुत छोटा कर दिया है। इसमें वृहद् तकनीकी प्रवृत्तियों का विशेष योगदान है।

शैक्षिक नूतन प्रविधि का शिक्षा के क्षेत्र में नूतन सहयोग है। भाषा शिक्षण प्रक्रिया में भी विशेष योगदान दृष्टिगोचर है। संस्कृत भाषा शिक्षण में भी शैक्षिक प्रविधि का प्रभाव दिखाई देता है। शिक्षक, संस्कृत शिक्षण प्रक्रिया में पद्य, गद्य, नाटक, व्याकरण को सरलतापूर्वक पढ़ा सकते हैं। शिक्षण प्रतिमानों द्वारा संस्कृत भाषा के संप्रत्ययों को रुचिपूर्वक एवं सरलतापूर्वक विद्यार्थियों में विकसित किया जा सकता है। संस्कृत शिक्षण में शिक्षण प्रतिमान के प्रयोग से अध्यापक अपने विद्यार्थियों के व्यवहारों का अध्ययन कर सकता है, समझ सकता है और उनमें वांछित सुधार लाने का प्रयास कर सकता है। उसे विषय-वस्तु के साथ-साथ व्यवहार, अध्ययन और व्यवहार सुधार की प्रणालियों का ज्ञान भी होना चाहिए। शिक्षण-प्रतिमान शिक्षक को इस क्षेत्र में समर्थ बनाता है।

संप्रत्यय संप्राप्ति प्रतिमान (Concept Attainment Model) का प्रयोग कर इस बात की पुष्टि दी जा सकती है कि विद्यालयों के कक्षा-कक्षा वातावरण में अन्य विषयों की तरह संस्कृत भाषा

के शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति भी की जा सकती है। इस प्रतिमान का प्रयोग कर विद्यार्थियों में संस्कृत व्याकरण के संप्रत्ययों को सरलतापूर्वक उपलब्ध कराया जा सकता है।

संप्रत्यय संप्राप्ति प्रतिमान का विकास जे.एस. ब्रूनर द्वारा किया गया था। इस प्रतिमान का प्रयोग कर शिक्षक, विद्यार्थियों को संप्रत्यय की प्रकृति की सही जानकारी प्रदान करता है। यह एक आगमनात्मक विधि है। संप्रत्यय संप्राप्ति प्रतिमान के तत्व —

1. **उद्देश्य** — इस प्रतिमान का प्रयोग भाषा का बोध तथा कौशल का विकास करना है। आगमन तर्क के लिए इस प्रतिमान का मुख्यतः विकास किया जाता है।
2. **संरचना** — इस प्रतिमान की संरचना तीन चरणों में पूर्ण होती है जो अग्रलिखित है —
  - (i) प्रस्तुतिकरण एवं संप्रत्यय परिचय

(क) सर्वप्रथम शिक्षक द्वारा नियोजित क्रम के 'हाँ' अथवा 'ना' लेबल लगाकर विभिन्न उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं, जैसे — विद्यार्थियों को यदि 'स्वर संधि' पढ़ाना हो तो जितने स्वर संधि के उदाहरण होंगे उसमें 'हाँ' का लेबल तथा उससे भिन्न उदाहरणों में 'ना' का लेबल लगा होगा।

हाँ (YES)	ना (NO)
नेन्द्रः= नर+इन्द्रः	वागीशः=वाक्+ईशः
गणेशः= गण+ईशः	षड्दर्शनम्=षट्+दर्शनम्
हिमालयः=हिम+आलयः	तस्याश्च=तस्याः+च
सूक्ति= सु+उक्ति	प्रातस्तत्र=प्रातः+तत्र

- (ख) विद्यार्थी, उन सकारात्मक उदाहरणों की नकारात्मक उदाहरणों से तुलना करते हैं।
- (ग) इस आधार पर विद्यार्थी परिकल्पना का निर्माण करते हैं।
- (घ) विद्यार्थी, सकारात्मक उदाहरणों को समझकर 'संप्रत्यय' की पहचान कर सकेंगे तथा उसे परिभाषित करेंगे।
- (ii) संप्रत्ययों का परीक्षण
- (क) संप्रत्यय से संबंधित बिना लेबल के अन्य उदाहरण प्रस्तुत कर, विद्यार्थियों से 'हाँ' अथवा 'ना' में उत्तर प्राप्त करना। (अन्य उदाहरणों को दिखाकर विद्यार्थियों से कहना कि उन्होंने जिस संप्रत्यय को पहचाना है उससे संबंधित उदाहरणों को पहचानें)

अन्य उदाहरण
भूमीशः= भूमि+ईशः दिग्गजः= दिक्+गजः महेन्द्रः= महा+इन्द्रः रमेशः= रमा+ईशः जगदीशः= जगत्+ईशः एकोविचित्रः= एकः+विचित्रः

- (ख) शिक्षक 'संप्रत्यय' की परिभाषा देकर उसके नियमों के विषय में बताते हैं (स्वर संधि की परिभाषा एवं उसके नियमों को बताएँगे)।
- (ग) विद्यार्थी उस संप्रत्यय संबंधी उदाहरण देंगे।

- (iii) चिंतन व्यूह रचनाओं का विश्लेषण
- (क) इस अंतिम चरण में विद्यार्थी संप्रत्यय (स्वर संधि) से संबंधित विचारों का वर्णन करेंगे।
- (ख) परिकल्पना एवं गुणों का महत्व बताएँगे।
- (ग) विद्यार्थी संप्रत्ययों का अभ्यास करेंगे।

**3. सामाजिक प्रणाली**—इस प्रतिमान के प्रारंभ में शिक्षक विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करता है तथा सहायता देता है। शिक्षक का लक्ष्य रहता है कि वह विद्यार्थियों को ऐसी दशा प्रदान करे जिससे वे प्रत्ययों का विश्लेषण कर सकें।

**4. सहायक प्रणाली**—इस प्रतिमान में शिक्षक पाठ्यवस्तु में इस प्रकार की स्थिति का निर्माण करता है जिससे प्रत्ययों का बोध हो सके।

इस प्रकार उपर्युक्त प्रतिमान का प्रयोग कर संस्कृत व्याकरण में शैक्षिक वातावरण को रुचिकर बनाया जा सकता है। इस प्रतिमान की उपयोगिता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। विश्व के प्रत्येक देश की शैक्षिक संस्थाओं में साधनों की उपलब्धता के अनुसार इसके भरपूर प्रयोग के प्रयास किए जा रहे हैं। संस्कृत व्याकरण शिक्षण में भी इसका प्रयोग किया जा रहा है तथा शिक्षण को प्रभावशाली बनाया जा रहा है।

शैक्षिक तकनीकी शिक्षक को शिक्षण उपागमों, शिक्षण व्यूह-रचनाओं तथा शिक्षण विधियों के विषय में वैज्ञानिक तथा मनोवैज्ञानिक ज्ञान प्रदान करती है। संस्कृत भाषा शिक्षण में किस समय, किस प्रकरण को स्पष्ट करने के लिए कौन-सी श्रव्य-दृश्य सामग्री का प्रयोग किया जाए, रेडियो, टेलीविजन का उपयोग कर किस प्रकार रेडियो विज्ञान तथा कैसेट

विज्ञान का प्रयोग किया जाए तथा विद्यार्थियों को अपने सीखने की गति के अनुसार अध्ययन करने के लिए कैसे अभिक्रमित अध्ययन सामग्री तैयार की जाए— इन सबकी जानकारी शिक्षक को शैक्षिक तकनीकी के माध्यम से ही पता चलती है।

### निष्कर्ष

विद्यार्थियों में व्यावहारिक परिवर्तन ही शिक्षण का मुख्य उद्देश्य है। व्यावहारिक परिवर्तन हेतु शिक्षक कक्षा वातावरण को समुचित बनाने का प्रयत्न करते हैं। यदि बालक विषयों से संबंधित संप्रत्ययों को विकसित नहीं करता है, तो उसे दी जाने वाली शिक्षा से उतना लाभ नहीं हो सकता है जितना होना चाहिए। शिक्षण-प्रतिमान शिक्षक को सीखने की प्रभावपूर्ण विधियों तथा सिद्धांतों का ज्ञान प्रदान करता है, सीखी हुई विषय-वस्तु को स्थायी करने की विभिन्न प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है और विद्यार्थियों में सीखने के प्रति प्रेरणा जाग्रत करने में तथा उनकी रुचि बनाए रखने में सहायता करता है।

शिक्षण-प्रतिमान उचित शिक्षण युक्तियों व साधनों का पता लगाता है और शिक्षक को उचित शिक्षण-अधिगम सामग्री व साधनों की संरचना, कार्यप्रणाली व प्रयोग की जानकारी कराता है। इन

प्रतिमानों के माध्यम से अधिगम मनोविज्ञान के विकास द्वारा बच्चों की व्यक्तिगत भिन्नता का पता लगता है। इसकी सहायता से शिक्षक विद्यार्थियों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं के आधार पर शिक्षण प्रक्रिया का नियोजन करता है और पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति में सफलता प्राप्त करता है।

कक्षा-कक्ष वातावरण में यदि संस्कृत व्याकरण को सामान्य विधि द्वारा पढ़ाया जाए तो व्याकरण शिक्षण के सभी उद्देश्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। यदि शिक्षक संस्कृत व्याकरण को पढ़ाते समय शैक्षिक वातावरण को रुचिपूर्ण एवं रचनात्मक बनाते हैं तो विद्यार्थी कक्षा में अधिक सतर्क तथा योगदान दे पाएँगे। उनके लिए विषय को समझना अधिक सरल हो जाता है।

विद्यालयों में विद्यार्थी संस्कृत विषय के प्रति अधिक रुचि नहीं रखते हैं। यदि संस्कृत व्याकरण को संप्रत्यय संप्राप्ति प्रतिमान की संरचना के आधार पर पढ़ाया जाए तो विद्यार्थी संस्कृत विषय के प्रति अधिक सजग होंगे। इस प्रकार संस्कृत व्याकरण शिक्षण में इस प्रतिमान का प्रयोग कर शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सकती है तथा शिक्षण प्रक्रिया को प्रभावशाली भी बनाया जा सकता है।

### संदर्भ

- अग्रवाल, जे.सी. और एस. गुप्ता. 2010. *शैक्षिक तकनीकी*. शिप्रा पब्लिकेशंस, नयी दिल्ली.
- कुलश्रेष्ठ, एस. पी. 2002. *शैक्षिक तकनीकी के मूलाधार*. विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा.
- चौधरी, नन्द किशोर और रिद्धि चन्द गुप्ता. 2010. *शिक्षण अधिगम प्रक्रिया*. हिन्द पब्लिशर्स, लुधियाना.
- भन्साली, आशा. 2008. *संस्कृत शिक्षण के नवीन आयाम*. राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर.
- मंगल, एस.के. और उषा मंगल. 2013. *शिक्षा तकनीकी*. विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा.

## बच्चों की दुनिया और उनका बचपन

मोईनुद्दीन खान\*

हमारे स्कूलों एवं अभिभावकों ने आज बेमौसम कार्बाइड से पके हुए आम की तरह, बच्चों को बड़ा करने की होड़-सी लगा रखी है। बच्चों पर बोझ का आलम यह है कि शैक्षिक सत्र की तो बात छोड़िए, गर्मी की छुट्टियों में भी बच्चों को नहीं बख्शा जा रहा है। अब बच्चे गर्मी की छुट्टियों में नाना-नानी, दादा-दादी या पड़ोस के बच्चों के साथ भी खेलने की फुरसत नहीं पाने वाले हैं। क्या आपने हमारे विद्यालय प्रशासन को इतना हलका समझा है कि वे बच्चों को इतनी मोहलत दे देंगे? माना यशपाल समिति (1993) की संस्तुतियों तथा मानव संसाधन विकास मंत्रालय (5 अक्टूबर 2018) के अनुदेशन ने उनके 'बस्ते के बोझ' को खासा कम करने का सुझाव दिया है, पर उस बोझ का क्या, जो हम उन्हें मानसिक तौर पर कई रूपों में दे रहे हैं। यदि व्यवस्था ऐसी भी हो जाए कि कक्षा 8 तक के हर बच्चे को बिना बस्ते के स्कूल भेजा जाए, तब भी वह बच्चे तब तक आज़ाद व चित्त-प्रफुल्ल नहीं महसूस करेंगे, जब तक कि उन्हें मानसिक रूप से आज़ाद न किया जाए। इस लेख में स्कूलों में बच्चों पर पड़ने वाले दबावों, घरों के हालात, बच्चों की मनःस्थिति, शिक्षकों के रवैये व खुले अंदाज़ में बच्चों की स्कूली व घरेलू परवरिश पर एक दार्शनिक व मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण दिया गया है।

हमारे देश में विद्यार्थियों के शैक्षिक बोझ पर चर्चा समय-समय पर होती रही है। यशपाल समिति (1993) ने अपनी संस्तुतियों में इसके घटाव की ओर लोगों का ध्यान खींचा। 5 अक्टूबर 2018, को मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के दिशा-निर्देशानुसार कक्षा 1 व 2 के बच्चों को गृह-कार्य से मुक्त कर दिया गया। विषयों की संख्या पर भी निर्देश दिए गए और साथ-ही-साथ स्कूली बच्चों के अधिकतम भौतिक (बस्ते के) बोझ का माप निर्धारित कर दिया गया (कक्षा 10 तक)। राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा 2005 भी यह सलाह

देती है कि बच्चों का विद्यालयी संसार उनके घरेलू संसार से जुड़ा हुआ हो। उन्हें किताबी ज्ञान से निकाल कर प्रयोगात्मक ज्ञान प्रदान किया जाए। बच्चों के शैक्षिक बोझ को हल्का-फुल्का बनाने की कवायदें लगातार चलती रही हैं और बहुत हद तक कारगर भी रही हैं। पर इन बोझों के अलावा कुछ ऐसे बोझ भी हैं जो हम वयस्कों (शिक्षकों, अभिभावकों, पड़ोसियों, विद्यालय प्रशासकों आदि) द्वारा बच्चों को अनजाने में दी गई सौगात (दरअसल अभिशाप) है। भावी शिक्षकों व अभिभावकों को इस ओर ध्यान देकर अपने नज़रिये में बदलाव लाना ही होगा। यह



नौनिहालों के उज्ज्वल भविष्य (असल में भारत के भविष्य) का सवाल है। बस्ते में भरी भारी किताबों के बजाय बच्चों का अपना पुस्तकालय हो। विद्यालय में कुर्सियाँ हों न हों, पर दरी बिछी हो जिस पर बच्चे बैठकर (जैसा चाहें) पढ़ सकें (ऐसा भला कौन-सा बच्चा होगा जो अपने घर कुर्सी पर बैठकर या एक ही जगह टिककर पढ़ने वाला हो?)। पर हम शायद विद्यालयों में गैर-परंपरागत माहौल देने से समाज से मिलने वाली आलोचना से डरते हैं।

मेरे अनुसार कम-से-कम कक्षा 5 तक का हर स्कूली कार्यक्रम ऐसा हो जहाँ बच्चों पर किसी भी तरह के बोझ का नामोनिशान न हो। अध्ययन-अध्यापन और परीक्षा को आसान व रोचक बनाकर परीक्षा तथा परिणाम के भूत से बच्चों को बचाना एक लक्ष्य हो। रूसो अपने एमील (काल्पनिक) को भी गैर-परंपरागत शिक्षा देने का पक्षधर था। हालाँकि उसे विरोध का सामना करना पड़ा, पर आज रूसो को कौन नहीं पढ़ना चाहेगा!

### बच्चे की नज़र में शिक्षक

कई बार बच्चा विद्यालय नहीं, कक्षा से डरता है। यह सुनने या पढ़ने में बड़ा विरोधाभासी प्रतीत होता है, पर मनोवैज्ञानिक दृष्टिपात करने से पता चलता है कि बच्चे स्कूल का नाम सुनकर खुश होते हैं; बस वे किसी खास कक्षा (कालांश) से घबराते हैं (यह इशारा सुधी पाठकों के लिए काफ़ी है)। कक्षा तीन के रोहन ने “आपका प्रिय शिक्षक” शीर्षक पर निबंध में अपनी तोतली ज़बान-सी ही तोतली लिखावट में बड़ी मासूमियत से लिखा कि ‘अमित सर बहुत अच्छे हैं, क्योंकि वह गृह-कार्य नहीं देते हैं।’ सोचने की बात है कि क्या गृह-कार्य देना या न देना बच्चे

की पसंद-नापसंद का कारण हो सकता है? शायद ऐसा न भी हो पर हमें इस बात पर तो इत्तेफ़ाक़ रखना ही होगा कि कक्षा का माहौल खुशगवार बनाया जाए, विद्यालय घर जैसा हो तथा गृह-कार्य यदि हो तो मज़ेदार हो ताकि रोहन का प्रिय शिक्षक बना जा सके।

हम शायद बाल मनोविज्ञान को दरकिनार करके ही यह तय करते हैं कि बच्चे के लिए क्या सही और क्या ग़लत है, क्योंकि वह अभी फ़ैसले लेने के लिए बहुत छोटा है। पर उसके चश्मे से भी हम शिक्षकों को देखना होगा। नज़रिया थोड़ा-सा बदलना होगा।

### पिता का सम्मान व उनकी आमदनी का फ़र्क

कक्षा के बच्चों की बातचीत में उनके पिता बड़े ही काबिल व्यक्ति होते हैं। कोई कहता है कि उसके पिता डॉक्टर हैं, कोई शिक्षक, कोई किसान, कोई माली, कोई ड्राइवर, कोई ठठेरा, कोई मिठाई वाला तो कोई बच्चा शान से बखान करते हुए बताता है कि उसके पिताजी मिट्टी के बर्तन बड़े शानदार बनाते हैं और मज़े की बात यह है कि बाकी बच्चे बड़ी उत्सुकता से सुनते व विश्वास करते हैं। पर तभी महीने के पहले सप्ताह के आखिरी दिन न जाने कहाँ से प्रधानाध्यापक की ओर से जारी की गई एक वीभत्स पर्ची, कक्षा अध्यापक के हाथ में आ जाती है। इसमें ऐसे बच्चों के नाम होते हैं जिनकी पिछले महीने की फ़ीस नहीं जमा हुई। कक्षा में उनका नाम बोलने के साथ ही उनके माता-पिता को बुलाने का परवाना भी होता है। शायद यही वह क्षण है जब बच्चों को डॉक्टर व ठठेरे में (आमदनी के आधार पर) फ़र्क समझ आ जाता है अर्थात् पिता के सम्मान एवं उनकी आमदनी के बीच के द्वंद्व का बालमन पर

भया क्या यह बोझ सतही है? शायद नहीं। मैं हैरान हूँ तोतो चान (चर्चित पुस्तक की बाल किरदार) की माँ की बाल समझ को देखकर कि उसने 20 सालों तक अपनी बेटी से सिर्फ़ इसलिए यह नहीं बताया कि उसे सात वर्ष की आयु में उसकी शरारत की वजह से विद्यालय से निकाल दिया गया था कि उसके बाल मन पर भला क्या प्रभाव पड़ेगा।

### बच्चा है शरारती

शिक्षकों व अभिभावकों की आम शिकायत है, बच्चों की शैतानी। बच्चा तो शैतानी करेगा ही। वो आज़ाद रहना चाहता है। हम उन्हें ज़ंजीरों में (नकली अनुशासन में) बाँधते ही क्यों हैं? कुछ शिक्षक बच्चों के अटपटे व बार-बार पूछे जाने वाले सवालों से आतंकित रहते हैं। वे चाहते हैं कि बच्चे उनसे सीधे व सरल सवाल पूछें। क्यों भला? आप भले यह सवाल करें कि एक शेर और एक हिरण लड़ेंगे तो कौन जीतेगा? पर बच्चा भला यह क्यों पूछेगा? वह तो पूछेगा कि दो शेर अगर लड़ें तो कौन जीतेगा? मेरे एक मित्र तो यहाँ तक कहते हैं कि इन बच्चों को रोका न जाए तो ये आगे चलकर नुकसानदेह साबित हो सकते हैं। मैं कहता हूँ जनाब, फ़ायदे और नुकसान की बात तो बाद की है, पहले आप उन्हें आगे चलने तो दीजिए।

एक कवि का परिवार अपने कवि मित्र के घर गया। खेलते वक्त उनके बच्चे से मेज़बान कवि के घर का एक कीमती फूलदान टूट गया। वहाँ तो वे खामोश रहे, पर अपने घर आने पर उन्होंने बच्चे की खूब खबर ली। संयोग से दुबारा उन कवि मित्र के घर जाना हुआ तो वही नटखट बच्चा वहाँ बड़े अदब से रहा। दार्शनिक मिज़ाज मेज़बान कवि ने यह

बात फ़ौरन भाँप ली। विदा करते वक़्त वह दरवाज़े तक छोड़ने आए और कहा कि इस बार आप बच्चे को साथ क्यों नहीं लाए? इस पर मेहमान कवि ने (अचरज से) अपने बच्चे के सिर पर हाथ रखते हुए कहा, यह है तो। तब मेज़बान कवि ने चुभते हुए लहजे व बेखयाली में कहा — अच्छा! मुझे लगा आप मिट्टी का गुड़ड़ा साथ लाए हैं। मेहमान कवि बेचारे झेंप गए।

हमें बच्चों को समझना होगा। जिन्हें हम उनकी शैतानी कहते हैं, दरअसल वही उनकी फ़ितरी (प्राकृतिक) आदत है। ज़रूरी नहीं कि हर बच्चा आपकी कक्षा में अपनी उपस्थिति सिर्फ़ इसलिए दर्ज कराता हो कि उसे आपसे गणित के कुछ हुनर सीखने हों। बहुत मुमकिन है कि कोई नटखट बच्चा सिर्फ़ आपकी नाक पर सरक कर आ गए आपके चश्मे को देखना पसंद करता हो, कक्षा के बीच-बीच में आपका गाना गाना उसे भाता हो या फिर आपकी मजेदार तोंद उसे हँसाती हो। जो भी हो, आपको अपने इन सभी अंदाज़ों को ज़िन्दा रखते हुए उसमें गणित की रुचि (उदाहरणस्वरूप) ज़रूर जगानी है और तब शायद उसकी उपस्थिति का कारण यही बन जाए। कुछ शिक्षक तो बच्चे के गृह-कार्य को अधूरा पाने पर अपनी नाक का सवाल समझते हैं। कभी-कभी खलनायकी के रूप भी दिखाते हैं। कई बार इसे बच्चे द्वारा जानबूझकर की गई शैतानी कहते हैं। ये सारी ही बातें निराधार प्रतीत होंगी, बस आप स्वयं कक्षा में बच्चा बन जाइए। गृह-कार्य का भूत, बच्चे पर हावी न होने दें। छुट्टी के दिन किसी बच्चे के घर पहुँचकर आप उसका दिन आनंददायक बना सकते हैं (यह काम विद्यालय प्रशासन की ओर से भी नियमित रूप से निर्धारित हो सकता है)।

## बच्चे की दुनिया — ज़रा जियूँ जी

बच्चा परमेश्वर की परम कृति है। जन्म से स्वतंत्र है। स्वतंत्र रहना भी चाहता है। रोकटोक से कुंठित हो उठता है। उसे शिक्षकों से, अभिभावकों से, समाज से, गर्ज हर उस शख्स से जो उसके इर्द-गिर्द है; इस बात की उम्मीद होती है कि सभी उसी के अनुसार कार्य करेंगे। उसके मन में सवाल है कि हफ़्ते में तीन छुट्टियाँ भी तो हो सकती हैं। चाह है हवाओं को छूने की, बारिश को अपनी अनुमति देने की कि वह बरसे और ख़्वाब देखने की। पर पहले रोकटोक से ही उसमें डर पैदा हो जाता है। नन्हा मोईन कैसे अपनी उम्मीद, हाल व डर बयाँ करता है, ज़रा देखिए—

मैं प्यारा सा इक् बच्चा हूँ  
मैं प्यारा सा इक् बच्चा हूँ  
काम करूँगा बड़े-बड़े  
दिनभर तो मैं खेला करता  
रात को सोता खड़े-खड़े  
मम्मी कहतीं— उठ जा बेटा  
मैं आवाज़ लगाता पड़े-पड़े  
मुन्नी ने राखी बाँधी है  
भले ही दिनभर लड़े-लड़े  
मम्मी तो रोटी देती हैं  
मैं पापड़ खाता कड़े-कड़े  
मिठाई खूब खाता हूँ  
दाँत हैं मेरे सड़े-सड़े  
मोती (पालतू कुत्ता) को न जाने देता  
दरवाज़े पर मैं अड़े-अड़े  
मोती ने दौड़ाकर काटा  
देखो दाँत गड़े-गड़े  
पौधों को डण्डे से पीटा

पत्ते उसके झड़े-झड़े  
किताबों को बस्ते में ठूँसा  
पन्ने उसके मुड़े-मुड़े  
पापा ने ज़ोरों से डाँटा  
होश हैं मेरे उड़े-उड़े  
मैं प्यारा सा इक् बच्चा हूँ  
काम करूँगा बड़े-बड़े

— मोईनुद्दीन ख़ान

बालकों के सर्वांगीण विकास हेतु उन पर हमारे द्वारा डाले जा रहे सारे बोझ (जाने-अनजाने) हटाने होंगे। स्कूल का अपना बागीचा हो तो वहाँ शिक्षक खुद बच्चों संग जाएँ और उन्हें प्रकृति से रूबरू कराएँ। तैराकी व दौड़ उनमें स्फूर्ति भर देगी। खेल व संगीत से शिक्षा बच्चों को नया अनुभव कराएगी। रेडियो कक्षा की व्यवस्था (जहाँ बच्चे समाचार सुनने या अन्य कोई शैक्षिक कार्यक्रम सुनने के लिए एक खास समय पर एकत्रित हों) उन्हें जागरूक बनाएगी। साथ ही उन्हें ये रोचक भी प्रतीत होगा।

## बच्चे गाते हैं अपने गीत — बेटुके गीत का मनोविज्ञान

मुझे अपनी 25वीं सालगिरह (वर्षगाँठ) का वर्षों से बड़ी बेसब्री से इंतज़ार रहा है। क्योंकि मेरी माँ ने यह कह रखा था कि वह मुझे इस (25वीं) सालगिरह पर ही एक विशेष तोहफ़ा देगी। पिछली बार जब यह मौका आया तो मैंने तपाक से अपने नायाब तोहफ़े की माँग की। तब उसने अलमारी से अपने ज़ेवर का एक डिब्बा निकाला। मैं बड़ी उत्सुकता से यह सब देख रहा था। फिर उस डिब्बे से उसने एक डिबिया निकाली, उस डिबिया से छोटी-सी कपड़े की थैली और फिर उस थैली से एक पुरानी पच्ची। और उस

पर्ची को माँ ने बड़े हसरत से मुझे थमा दिया। मैंने उसे खोला तो उसमें माँ के हाथों की लिखावट में बड़ी ही बेतुकी दो लाइनें लिखी मिलीं —

*आरे खसी खसीरा  
कोरे रगे रगीरा*

मैंने बेचैनी, दुःख, गुस्से और अचरज से पूछा कि यह क्या है? तो माँ ने बताया कि ये तुम्हारी खुद की गढ़ी हुई पंक्तियाँ हैं। ये तुम पाँच वर्ष की आयु में गुनगुनाया करते थे, पर मैंने तुम्हें कभी टोका नहीं। बल्कि इन्हें लिखकर सहेज लिया। मैं सोचने लगा कि क्या मेरे बालमन में भी एक कवि था? पर मेरी माँ को यह मनोविज्ञान कैसे पता? आज के भावी शिक्षकों को इस बाल मनोविज्ञान पर खासा ध्यान देना होगा। बच्चे अकसर गुनगुनाते हैं (बेतुका ही सही)। उन्हें बिलकुल न टोके, बल्कि उलटा-सीधा राग अलापने दें। इस तुकबंदी से शब्दकोश में तो वृद्धि होगी ही, साथ ही सार्थक व निरर्थक शब्दों का भेद भी वे बखूबी जान पाएँगे।

### अनुशासित पिता और मदमस्त बच्चा

मेरा मित्र एक दिन अपने आठ साल के बच्चे की बड़ी लगन से शिकायतों की पोटली खोलते हुए कहने लगे —स्कूल से आते ही बस्ता धड़ाम से पटक कर खेलने लगता है, घूमता है, न जाने क्या-क्या चीज़े एक झोली में इकट्ठा करता रहता है, गंदा रहता है, किताबें फटी हुई होती हैं, गृह-कार्य तो बिलकुल भी नहीं करता, कार्टून तो मानो इसका सगा भाई हो। मित्र की इस नादानी पर मुझे हँसना आया, पर मैंने काबू रखते हुए गंभीरता से पूछा— और? जनाब ने भी बात की गंभीरता को समझते हुए उत्तर दिया—चित्रकारी से दीवार खराब कर दी है। मेरा बस नहीं चला कि

तुरंत कह दूँ; घर में आए पिकासो की अवहेलना कर रहे हैं आप। डर लगा कि कहीं सामने आई हुई चाय हटा न ली जाए। सो मौन रहा।

क्या आप (शिक्षक व अभिभावक) समझते हैं कि बच्चे यह मानें कि उनकी एक अहम (खास) ज़िम्मेदारी है—गृह-कार्य पूरा करना, कक्षा में अनुशासित रहना या घर जाते ही किताबें निकाल कर पढ़ने बैठ जाना? बाल मनोविज्ञान तो कहता है कि इससे ज़्यादा बच्चे अपनी ज़िम्मेदारी इस बात में समझते हैं कि जिस टोली के वे सदस्य हैं, घर पहुँचते ही पहले उस टोली के अन्य सदस्यों के साथ सामुदायिक पार्क में इकट्ठा हुआ जाए और एक दिन पहले किए गए वादे को पूरा किया जाए। चाहे वह वादा बगल वाली आण्टी के घर के दीवार के किनारे लगे हुए अमरूद के पेड़ से अमरूद तोड़ने का ही क्यों न हो। हालाँकि इस बात की शिकायत से पिताश्री का डण्डा हरकत में आ सकता है। पर आखिरकार वादा जो रहा, वो भी बच्चों का वादा!

### खास अनुभव

बी.एड. प्रैक्टिस टीचिंग के दौरान मैं एक खास अनुभव से दोचार हुआ (सामना किया)। मेरे सभी साथी कक्षा 6 के एक बच्चे से खासे पेशान थे। इलज़ाम था कि बड़ा शरारती है, सवाल दागता है, जेब में कबाड़ रखता है, बेतुके तर्क देता है, सांवेगिक रूप से अस्थिर है व जल्दी विचलित हो जाता है। हम लोगों को अवलोकन करके एक विद्यार्थी-शिक्षक डायरी भी भरनी थी। मेरे सभी साथी रोज़ “शरारती व न पढ़ने वाला बालक” के कॉलम में उसी का नाम लिखते। मैं यह काम अभी रफ़ के तौर पर करता चल रहा था। मैं हड़बड़ी नहीं करना चाह रहा था। वैसे

प्रधानाचार्या महोदया ने बच्चों की जो सूची थमाई थी, उसमें उसके पिता के नाम के आगे 'स्वर्गीय' शब्द भी मुझे उसमें सहानुभूति उत्पन्न करने को बाध्य कर रहा था। एक दिन कक्षा को रोचक बनाने हेतु मैंने गणितीय तर्क के एक उच्च स्तर के सवाल को श्यामपट्ट पर लिखकर बच्चों से उसका उत्तर देने को कहा और साथ ही उन्हें ईनाम का भी आश्वासन दिया। बाकी बच्चे जब तक इस नए प्रश्न की प्रकृति समझ पाते तब तक उस शरारती बच्चे का उत्तर आ चुका था। उसकी इस असाधारण समझ से मैं अवाक् रह गया। मेरी उसमें विशेष रुचि जगी। उन दिनों मैं डॉक्टर अमिता बाजपेयी जी की एक शानदार पुस्तक *विशिष्ट बालक* पढ़ रहा था। इस बच्चे के करीब से अवलोकन और किताब से मिलने वाले अनुभव ने मुझे ये मानने पर मजबूर कर दिया कि वह वास्तव में एक सृजनात्मक बालक था।

अब मैंने अपनी डायरी भरना शुरू की और उसे 'सृजनात्मक बालक' वाले कॉलम में स्थान दिया। न जाने शिक्षक बच्चों के बोलने से क्यों इतना घबराते हैं? बच्चा बोलेगा नहीं तो उस तोहफ़े (ज़बान/आवाज़) का क्या मोल जो कुछ ही वर्षों पहले उसने पाई है? हमें अपने चश्मे (बच्चों की समझ) पर पड़ी धूल को साफ़ करने की आवश्यकता है।

### भावी शिक्षकों से

आज भी विद्यालयों में कुछ ऐसे शिक्षक हैं जिनका उदाहरण आदर्श शिक्षक के रूप में समूचे भारतवर्ष में दिया जा सकता है, पर इनकी संख्या गिनी-चुनी ही है। बच्चों को समझने के लिए व उनसे उसी तरह पेश आने के लिए सभी शिक्षकों से बाल मनोविज्ञान का अध्ययन व उसकी समझ अपेक्षित है। भावी शिक्षकों

को उत्तम नागरिक तैयार करने व बचपन बनाने (सँवारने) के लिए ज़िम्मेदारी अपने कंधों पर लेनी होगी। बच्चों को सही ऐनक से देखने की ज़रूरत को महसूस करना होगा —

आप से

अपने रुख को ज़रा बदल लीजिए  
नौनिहालों की खुशी का जतन कीजिए  
प्यार दीजिए, कुछ पल दीजिए  
ज़िम्मेदारी का आप निर्वहन कीजिए  
आज दीजिए, उन्हें कल दीजिए  
कुछ नहीं, बस उन्हें आप बचपन दीजिए  
कच्चे हैं अभी, न पका फल कीजिए  
न वीरान उनका चमन कीजिए  
न औरों की आप नक़ल कीजिए  
नया आप करेंगे, वचन दीजिए  
सवालों को उनके हल कीजिए  
हैं उस्ताद आप तो सहन कीजिए  
फूल हैं, मुरझायें तो जल दीजिए  
बालमन पर अध्ययन गहन कीजिए  
नौनिहालों की खुशी का जतन कीजिए

— मोईनुद्दीन खान

### बच्चे और हम — नैतिक शिक्षा की दरकार किसे?

दुनिया भर के बच्चों के स्कूली पाठ्यक्रम में नैतिक शिक्षा की पाठ्यपुस्तकें बहुतायत में शामिल मिलेंगी। बच्चों को नैतिक समझ इतनी हो न हो, पर यह तो तय है कि वे सीखप्रद कहानियों को पढ़कर खूब आनंदित होते हैं। ऐसी पुस्तकों का समावेश तर्कसंगत भी लगता है। पर कभी आपने बच्चों को साज़िश (षड्यंत्र) रचते देखा है (हम बड़ों में भी यह दुर्गुण

नहीं है शायद, है न?)? हाँ, वे शरारत भले खूब करते हों। बड़े अपने आचार में सुधार रखें तो बच्चे देखकर व अनुकरण से ही बखूबी सीख लेंगे। तब शायद यह बिंदु (नैतिक शिक्षा की पुस्तकों वाला) सोचने वाला है। आप खुद गौर करें कि क्या अपने किसी सहकर्मी को उसकी किसी खता पर आप उसे दिल से माफ़ कर पाते हैं, जबकि उसने आपसे तीन बार क्षमा याचना की हो। और इन मासूमों में तो सिर्फ़ उँगली मिलाने भर मात्र से दोस्ती फिर से पुरानी जैसी और पक्की हो जाती है। अनुकरण व विश्वास का आलम यह है कि बच्चों को परियों की कहानियाँ भी सत्य प्रतीत होती हैं और वे बड़ी मासूमियत से सुनते हैं। बच्चे खेल में भी बेईमानी नहीं करते। वे साथ दौड़ना चाहते हैं। प्रथम-द्वितीय का फ़र्क़ उन्हें हम बता देते हैं। महँगे व सस्ते खिलौने, अमीरी व गरीबी आदि, सारी देन तो सभ्यता की है। अंतर की भाषा तो हम ही सिखाते हैं।

“जब मैं बच्चा था तो छोटी-छोटी चीज़ों से अपने खिलौने बनाने और अपनी कल्पना में नए-नए खेल ईजाद करने की मुझे पूरी आज़ादी थी। मेरी खुशी में मेरे साथियों का पूरा हिस्सा होता था; बल्कि मेरे खेलों का पूरा मज़ा उनके साथ खेलने पर निर्भर करता था। एक दिन हमारे बचपन के इस स्वर्ग में, वयस्कों की बाज़ार-प्रधान दुनिया से एक प्रलोभन ने प्रवेश किया। एक अंग्रेज़ी दुकान से खरीदा गया खिलौना हमारे एक साथी को दिया गया; वह कमाल का खिलौना था — बड़ा और मानो सजीवा। हमारे साथी को उस खिलौने पर घमंड हो गया और अब उसका ध्यान हमारे खेलों में इतना नहीं लगता था; वह उस कीमती चीज़ को बहुत ध्यान से हमारी पहुँच से दूर रखता था, अपनी इस खास वस्तु पर इठलाता हुआ। वह

अपने अन्य साथियों से खुद को श्रेष्ठ समझता था, क्योंकि उनके खिलौने सस्ते थे। मैं निश्चित तौर पर कह सकता हूँ कि अगर वह इतिहास की आधुनिक भाषा का प्रयोग कर सकता तो वह यही कहता कि वह उस हास्यास्पद रूप से श्रेष्ठ खिलौने का स्वामी होने की हद तक हम से अधिक सभ्य था। अपनी उत्तेजना में वह एक चीज़ भूल गया — वह तथ्य जो उस वक़्त उसे बहुत मामूली लगा था कि इस प्रलोभन में एक ऐसी चीज़ खो गई जो उसके खिलौने से कहीं श्रेष्ठ थी, एक श्रेष्ठ और पूर्ण बच्चा। उस खिलौने से महज़ उसका धन व्यक्त होता था, बच्चे की रचनात्मक ऊर्जा नहीं, न ही उसके खेल में बच्चे का आनंद था और न ही उसके खेल की दुनिया के साथियों को खुला निमंत्रण” (रबीन्द्रनाथ टैगोर के निबंध ‘सभ्यता और प्रगति’ से)। एक बार मूल्यों की शिक्षा पर अपनी सोच के मुताबिक ही आगरा के एक शिक्षा संस्थान में आयोजित सेमिनार में मैंने अपना पेपर प्रस्तुत किया। एक कुशल व भद्र शिक्षिका ने मेरे विचारों से अपनी थोड़ी असहमति जताई। यह दूसरी बात है कि कार्यक्रम समाप्ति पर मैंने उन्हें अपनी एक सहकर्मी से बात करते हुए सुना, जिसमें आर.टी.आई. से वो किसी के नाक में दम करने की बात कर रही थीं।

### अभिभावकों की ओलंपिक दौड़

श्रीमती खान आजकल थोड़ा परेशान हैं, क्योंकि उनके बच्चे ने सालाना इम्तेहान में अपने पड़ोस में रहने वाले सहपाठी से दो अंक कम प्राप्त किए हैं। अगली बार उससे आगे निकलने की हिदायत भी उन्होंने अपने बच्चे को दे दी है; और तो और गणित का (मुश्किल विषय जो ठहरा) एक शिक्षक भी घर

पर पढ़ाने के लिए नियुक्त कर दिया है। अभिभावकों की यह दौड़ बच्चों को भला कहाँ ले जाकर पटकेगी? गृह-कार्य को लेकर शिक्षक जितना सतर्क है, माता-पिता उससे दोगुना। गृह-कार्य जाँचना वे अपना सबसे बड़ा धर्म समझते हैं, क्योंकि उनके हिसाब से बच्चे इसमें लापरवाही बरतते हैं। कई बार तो इसे बच्चों के परीक्षा परिणाम से जोड़कर भी देखते हैं। स्कूल के बाद घर पर इतना बोझ कहीं उसके बचपन को डुबो तो नहीं रहा?

बहुत छोटे बच्चों को भी कंप्यूटर या स्मार्टफोन थमाया जा रहा है। इसे समय की माँग बताकर अभिभावक ये भूल कर बैठते हैं कि आभासी दुनिया में खोए रहने वाली बीमारी की मशीन उन्होंने बच्चों को फ़राहम (उपलब्ध) करा दी है। यदि आप इसे बच्चे के मनोरंजन का साधन मानते हैं तो निस्संदेह आप गलतफ़हमी में जी रहे हैं। बच्चे बड़े ही विनोदशील होते हैं। आप यह मानकर चलें कि उनमें यह हुनर कूट-कूट कर भरा होता है, आप अच्छा मज़ाक करके तो देखें। फिर भला आपसे अच्छा मनोरंजन का साधन और क्या होगा बच्चे के लिए! एक बच्ची से मेरे संवाद में ज़रा उसका लुत्फ़ अदाज़ होता मिज़ाज तो देखिए —

मैं — आपका नाम क्या है?

बच्ची — चुलबुली (हँसते हुए)।

मैं — आपका यह नाम क्यों है?

बच्ची — आपको पसंद नहीं आया क्या? (उलटा मुझसे ही सवाल दाग बैठी)।

मैं — नहीं, नहीं ऐसी बात नहीं (सकपकाते हुए)। वैसे आप करती क्या हैं?

बच्ची — मैं टीचर हूँ बहुत सारे बच्चों को पढ़ाती हूँ। आप क्या करते हैं?

मैं — (उसके जवाब से हैरान होकर) मैं भी एक शिक्षक हूँ।

बच्ची — चलिए, आप कहते हैं तो मान लेती हूँ (और सरपट दौड़ लगाकर, यह जा वह जा)।

बच्चों की अपनी ही दुनिया है जहाँ वे अपनी फ़ितरत के खुदमुख्तार (आत्मनिर्भर) और चुलबुले मालिक हैं। ऐसे में बच्चों को उनके स्वभाव के विपरीत अपने (वयस्कों के) पैमाने पर मापना उन्हें कुंठित व कुत्सित ही करेगा।

### बाएँ हाथ का नालायक

कुछ बच्चों में बाएँ हाथ से कलम थामने की प्रवृत्ति देखी जाती है। उनके सुलेख भी सुंदर होते हैं (यह दाएँ हाथ की लिखावट से तुलना बिल्कुल नहीं है) और फिर कुछ बच्चे जीवनपर्यंत बाएँ हाथ से ही लिखने वाले बन जाते हैं। हालाँकि शिक्षक व अभिभावक हरसंभव उनकी इस आदत को छुड़ाने का प्रयत्न करते हैं। मानो बाएँ हाथ से लिखना पाप हो। हमें लिखावट चाहिए होती है या लिखावट में प्रयुक्त हाथ का प्रमाण। बड़े मज़े की बात है कि दाएँ हाथ से लिखने वाले कुछ होनहार, बाएँ हाथ से भी उतनी ही गति व निपुणता से लिखने का अभ्यास कर लेते हैं और इसे गुण स्वरूप देखा जाता है। तब हम बाएँ हाथ से लिखने की बच्चे की आदत को छुड़ाएँ क्यों? बस उसमें दाएँ हाथ से भी लिखने की आदत क्यों न डाल दें?

### उदास मन किस काम का

आप कभी उदास हों और आपसे कोई काम अपेक्षित हो या आप स्वयं कुछ करना चाह रहे थे तब ज़रा गौर करें कि क्या उस काम में आपका मन लगेगा? बिल्कुल नहीं। लगता है कि सब कुछ

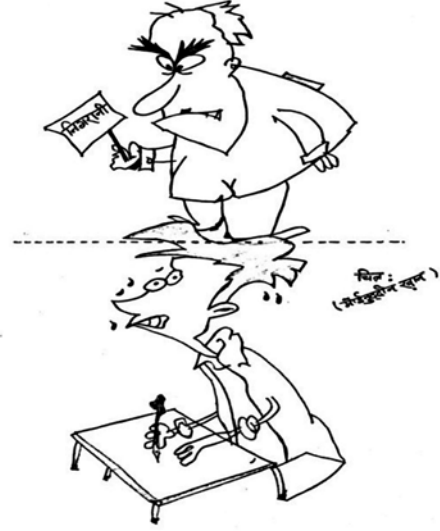
अधूरा-अधूरा-सा है। सामने अँधेरा-सा रहता है। ऊर्जा का हास होता महसूस होता है। काम में बिल्कुल मन नहीं लगता। भले ही वह बात कितनी छोटी ही क्यों न हो। तब ऐसे में भला उदास बच्चे से हम कुछ अच्छा काम करने की उम्मीद कैसे लगा सकते हैं? बच्चे ज्यादातर डाँटने, फटकारने व उनकी बात न रखने से उदास होते हैं।

छोटी-सी खुशी भी मन को हलका कर देती है। बच्चे खुश होने पर तितलियों से उड़ते नज़र आते हैं और उदास होने पर सबसे खराब कार्टून बनाकर उसमें अपने पिता या शिक्षक का नाम लिखने से भी गुरेज़ नहीं करते। शिक्षकों से उम्मीद की जाती है कि वे बच्चों को डाँटें नहीं। उन्हें उनकी गलतियों के लिए सुधार की ओर ले जाएँ। डाँटना उन्हें उदास करेगा और उदास मन किस काम का? (दुःखी बच्चा कुछ भी प्रगति नहीं कर सकता)।

### रोबीला शिक्षक

बेशक शिक्षकों का यह उत्तरदायित्व है कि वे बच्चों की निगरानी करें, पर यह निगरानी कहीं कड़ी निगरानी न बनने पाए। सिर पर सवार शिक्षक की संकल्पना भर मात्र से ही रूह काँप उठती है। बच्चे उनकी उपस्थिति में असहज महसूस करते हैं। उन्हें बातचीत की उतनी ही आज़ादी चाहिए जितनी आज़ादी से प्रकृति ने उन्हें ज़बान दी है। प्यार से दृष्टिपात और आँख तरेरे में बहुत फ़र्क है। सिर सवारी से बचाव (नज़रअंदाज़) कक्षा को बेहतरी की ओर ले जाएगा। जहाँ तक अनुशासन का सवाल (इस बात का डर कि ज्यादा छूट से कक्षा अशांत न हो) है तो बेहतर संप्रेषण कला, पूर्व तैयारी, बच्चों की कक्षा में पूरी भागीदारी और विषय पर शिक्षक

की अच्छी पकड़ बेहतरीन समाधान सिद्ध होंगे। तब रोबीला शिक्षक (मजबूरी वश) बनने की चाह से भी आप बच पाएँगे।



### बच्चे करते हैं कानाफूसी

आमतौर पर लाख मना करने के बावजूद भी बच्चे खुसर-फुसर से खुद को रोक नहीं पाते और नतीजा कई बार शिक्षक के आपा खो बैठने के रूप में देखने को मिलता है। हो सकता है शिक्षक को लगे कि मेरे विषय में बच्चे कुछ बातचीत कर रहे हैं। बहुत मुमकिन है कि यह सही भी हो, पर यकीन जानिए बच्चे यही कह सकते हैं कि आप उनके भाई-बहन, माता-पिता या किसी अन्य रिश्तेदार जैसे लग रहे हैं, या फिर आप बहुत अच्छे हैं। हो सकता है पूर्व कक्षा में आपने कोई मज़ेदार वादा किया हो और कोई बच्चा उसे आपको खुद याद दिलाने की ज़हमत न करके यह ज़िम्मेदारी अपने पड़ोसी के सिर मढ़ना चाहता हो। तब कानाफूसी तो लाज़मी है। बस यहीं



तक तो है बच्चों की दुनिया। तब इतना परेशान होने की क्या बात है? कहीं आपकी, कम धैर्य रखने की क्षमता आपको बच्चे के डर का कारण न बना दे। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से यदि धैर्य की बात करें तो यहाँ शिक्षकों को सकारात्मक रूप से संवेदनशील होने की आवश्यकता है।

### खाने दो मुरब्बा

बच्चों की शरारतों से संबंधित एक और खास शिकायत है, उनका उसी काम को बार-बार करना जिसके लिए उन्हें मना किया गया हो। टॉम की कहानी आपको याद ही होगी कि कैसे उसकी मौसी ने उसे मुरब्बे के पास भी फटकने की मनाही कर रखी थी। पर क्या मजाल कि टॉम खुद को रोक पाए। और टॉम को सजा के रूप में मिलती है एक लंबी चारदीवारी की पुताई। क्या उसने तरकीब नहीं निकाली (आप खूब समझ रहे होंगे)? सार यह है कि हम उन्हीं चीजों से बच्चों को रोकते हैं जिनकी तरफ वे सहज ही आकर्षित होते हैं (ऐसा उनकी स्वाभाविक प्रकृति के कारण होता है)। शिक्षक उन्हें रोकने के बजाय (यदि उससे अनुशासन भंग न हो) अपनी देखरेख में वह काम अपने-आप उनको करने की पूरी छूट दें। आज्ञादी उन्हें खुद ही अपना ध्यान कहीं और करने पर बाध्य कर देगी। बच्चों का अवधान बहुत समय तक एक ही स्थान या चीज पर नहीं रहता। बाल्यावस्था में तीव्रगामी परिवर्तन देखने को मिलते हैं। किसी काम की पुनरावृत्ति भी उनका आकर्षण किसी खास काम के प्रति कम करेगी। मैंने एक बड़ा ही मजेदार लेख पढ़ा जिसमें एक माँ अपने बच्चे के कागज़ फाड़ने की आदत से परेशान थी। समाधान स्वरूप उसने उसके कमरे में रद्दी अखबारों

का ढेर लगा दिया। अखबार फाड़कर वह बच्चा इस कदर उकताया कि अब कहने पर भी किसी कागज़ को हाथ न लगाता।

### स्कूल का दिन, बातों का पिटारा

मनोवैज्ञानिक तथ्य बताते हैं कि बच्चे किसी दबाव में न हों तो बातों से जल्दी थकते ही नहीं। घर की सारी बातें अपने कक्षा-मित्र से कह देना चाहते हैं। शायद शिक्षक इसे कक्षा अशांति का एक रूप मानते हैं। जबकि कोशिश यह होनी चाहिए कि दिन भर की कक्षा ऐसी बनाई जाए कि उतनी ही बातें वह अपनी माँ के लिए घर लेकर लौटे और साथ ही शिक्षक प्रत्येक बच्चे से बात करने, सिर पर हाथ फेरने और उसकी तारीफ़ करने से न चूकें।

### हर बच्चा नायाब है

एक बड़ी कक्षा में निस्संदेह बड़े तौर पर व्यक्तित्व भिन्नता कई रूपों में देखने को मिलेगी। कुछ बच्चे क्षेत्र विशेष में अपने हुनर का प्रदर्शन कर सकते हैं। तब शिक्षकों का आकर्षण भी उनकी ओर स्वाभाविक है जो स्नेह या तारीफ़ के रूप में कक्षा में झलक सकता है। पर यह एकतरफ़ा झुकाव कहीं बाकी बच्चों या किसी खास बच्चे में निराशा न भर दे। प्रत्येक बच्चा कुछ-न-कुछ खास गुण के साथ पैदा हुआ है। कुछ बच्चे संकोची स्वभाव के कारण भी कक्षा में हिचकिचाते हैं। शिक्षकों को इन्हें पहचानने की व कक्षा में समदृष्टि रखने की भरसक कोशिश करनी चाहिए।

### हाफ़ डे या बोझ डे — शनिवारी हल

ज्यादातर स्कूलों में शनिवार को आधे दिन की पढ़ाई का रिवाज है। बच्चे इसे आधे दिन की छुट्टी वाला दिन मानकर बड़े खुश होते हैं (पर नया प्रवेश पाए

बच्चे बिलकुल नहीं)। कई विद्यालयों में इस दिन बाल सभा का भी प्रावधान होता है (हर नया बच्चा उस दिन को सोच कर ही घबरा उठता है) जिसमें बच्चे अपनी प्रतिभा दिखाते हैं। इसके लिए कक्षावार या अनुक्रमांकवार क्रम निर्धारित किया जाता है।

मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ। कक्षा एक में मुझे दाखिला मिला तो मेरे गाँव के ही एक लड़के ने (जो उसी विद्यालय के कक्षा पाँच में था) बताया कि स्कूल में हर शनिवार को बाल सभा होती है। जिसमें हर कोई अपनी बारी आने पर सीढ़ी पर खड़े होकर गाना सुनाता है। मेरे हाथ-पाँव फूल गए। गाना सुनाना तो मेरे बालमन ने स्वीकार किया, पर सीढ़ी पर खड़े होकर गाना सुनाने को बिलकुल नहीं। शनिवार आया तो मैंने उस दिन पिताजी से स्कूल जाने से मना कर दिया। गनीमत थी कि माताजी ने राज़ खुलवा लिया और खूब तसल्ली देकर पिताजी के साथ स्कूल भेजा। कार्यक्रम शुरू हुआ तो मुझे मालूम हुआ कि विद्यालय में जगह की कमी होने के कारण प्रधानाचार्य महोदय ने सीढ़ी को ही बच्चों के लिए मंच के रूप में चुना था। जहाँ हर बच्चा अपनी ऊँचाई के हिसाब से खड़ा हो सकता था। मेरे अग्रज श्री ने तो खामखा ही मुझे डरा दिया था। बड़ा मजेदार रहा वह शनिवार।

### टोकरी का चक्कर

अकसर प्रिंसिपल साहब दिन में किसी भी समय पीठ पीछे हाथ बाँधकर विद्यालय के राउण्ड पर निकलते हैं। वह किसी को कहते कुछ नहीं और चुपचाप फिर अपने ऑफिस की ओर चले जाते हैं। पर शिक्षकों की भाव-भंगिमा में एक स्पष्ट परिवर्तन देखने को मिल सकता है। तब भला बच्चों में क्यों नहीं? बच्चे

आदतन कुछ-न-कुछ चीज़ें घर पर छोड़ आते हैं। रोज़मर्रा के अपने राउण्ड में अगर प्रिंसिपल साहब एक टोकरी लेकर (जिसमें रबड़, पेंसिल, चॉकलेट आदि हों) दिन में एक बार एक चक्कर लगा दें तो क्या शिक्षकों व बच्चों की भाव-भंगिमा में फ़र्क आएगा? ज़रूर...

### सैर-सपाटा

सैर के नाम से ही बच्चे बल्लियों उछलने लगते हैं। ज़रूरी नहीं है कि किसी लंबे ट्रिप पर ले जाएँ। आप चाहें तो उन्हें स्कूल के आस-पास बगल के खेतों की भी सैर करवा सकते हैं। उनमें नई चीज़ों को जानने की आश जगेगी, नई जानकारीयाँ होंगी, कृषि के विषय में भी जानेंगे। काफ़ी खुश होंगे और विद्यालय में भी उनका मन खूब रमेगा। उनमें सक्रियता आएगी और तनावरहित रहेंगे। अगर स्कूल पास हो तो बच्चे को पैदल ही स्कूल जाने दें। यह जानना बड़ा रुचिकर होगा कि एक शोध के नतीजे बताते हैं कि 1970 में लगभग 66 प्रतिशत बच्चे पैदल स्कूल जाया करते थे जबकि आज यह आँकड़ा महज़ 13 प्रतिशत पर सिमट कर रह गया है। चलने-फिरने से बच्चे प्रत्यक्ष रूप से आनन्दित होंगे ही व अप्रत्यक्ष रूप से हष्ट-पुष्ट होने के फ़ायदे से भी लाभान्वित होंगे।

### शायतुक विधि — कल्पनाशक्ति का विकास

शायरी के 'शाय' और तुकबंदी के 'तुक' से मिलाकर बनाई गई 'शायतुक विधि' (मेरी विधि) को मैंने अपनी बी.एड. प्रैक्टिस टीचिंग में काफ़ी कारगर पाया। बच्चों के अमूर्त चिंतन को उभारने व तुकबंदी सिखाने की गर्ज से मैंने इस विधि को रचा है। इसमें शिक्षक सबसे पहले बच्चों को बता दें कि कितनी पंक्तियों की कविता लिखनी है। फिर हर बच्चे

को (या टोली बनाकर) उसका शीर्षक बता दें (जैसे — नदी, सूरज, हमारा भारत, चंदा मामा, तितली आदि)। अब उसे तुकबंदी के लिए बताएँ कि पहली-तीसरी या पहली-दूसरी पंक्तियों के अंतिम शब्द ध्वनि में मिलते-जुलते होने चाहिए। उदाहरणस्वरूप चार पंक्तियों को श्यामपट्ट पर लिख भी सकते हैं। बारीकी से निरीक्षण करें व उनके शब्दों में सुधार करें, आपका बाल कवि तैयार है। पियाजे का सिद्धांत ऐसे अमूर्त चिंतन का एक खास समय निर्धारित करता है (11 वर्ष की आयु से)। थोड़े बड़े आयु के बच्चों में इसका प्रयोग सार्थक हो सकता है। इसके प्रयोग से बच्चों में कल्पनाशक्ति (अमूर्त चिंतन) का विकास व शुरुआत होगी। शब्दकोश में वृद्धि के साथ-साथ बच्चे नया भी सोचेंगे।

### खाना हो मजेदार व पोषक

आधुनिक भारतीय घरों से (खासकर शहरों में) परंपरागत पकवान गायब-सा होता जा रहा है। इसका असर बच्चों के खाने के डिब्बों पर भी पड़ना स्वाभाविक है। रोटी-सब्जी की जगह दूसरी तमाम चीजों ने ले रखी है (वास्तव में, मुझे इनके नाम भी नहीं पता)। कक्षा की थकान के बाद बच्चे को पौष्टिक खाना मिलना ही चाहिए। अभिभावक उनके डिब्बों में प्रोटीन की मात्रा का भरपूर ध्यान रखें। प्रधानाचार्य व शिक्षक भी अपनी भूमिका ज़िम्मेदारी से निभाएँ तो काम आसान होगा। बच्चे की पसंद का भी खयाल रखा जाना चाहिए। पर कहने की बात नहीं कि उसके शरीर की ज़रूरतों को टॉफी, बिस्किट और नमकीन तो पूरा करने से रहे।

### हमारे विद्यालय शानदार भी

ये सच है कि बेहतरी की तलाश मानव स्वभाव का एक हिस्सा है और बात जब बच्चों की हो तब तो

ज़िम्मेदार लोगों के लिए ये आवश्यक हो ही जाता है कि वे उनके लिए सर्वोत्तम चुनें। पर यदि निष्पक्ष रूप से आकलन करें तो हम पाएँगे कि बहुत-सी ऐसी खासियतें हमारे विद्यालयों की हैं जो अनुकरणीय हैं और शायद और कहीं न मिलें। आज के इस आधुनिक युग में भी हर शिक्षक बच्चे से गुरुकुल परंपरा जैसा ही सम्मान पाना चाहता है और तब उसे भी बच्चे से वैसा ही व्यवहार करना होता है (और वो करता भी है)। फिर बदले में बच्चों में अपने आप ही शिष्टाचार फलने लगता है। कुछ और बहुत-सी अच्छी विशेषताएँ जैसे — ज्ञान का विकास, अच्छा आचरण, चरित्र विकास पर जोर, नैतिक शिक्षा, संस्कृति की शिक्षा, विश्व बंधुत्व की भावना का विकास, अनुशासन, कृषि व तकनीकी आदि की शिक्षा हमारे स्कूलों की धरोहर-सी हैं। ज़रूरत है बस इन विरासतों को संजोते हुए कुछ गैर-परंपरागत (जो बच्चों के लिए हितकर हों) तरीकों को भी विद्यालयी व्यवस्था में आत्मसात करने की।

### चटनी की खेती

मैंने बचपन में अपने स्कूल में चटनी की खेती की है। आप हैरान हैं? हाँ, ये मेरी एक खुराफ़ाती सोच ही है। पर कैसे? आइए बताता हूँ। मेरे प्राइमरी स्कूल में प्रिंसिपल साहब ने थोड़ी ज़मीन छोड़ रखी थी। वहाँ हम बच्चे ही गुड़ाई करते थे। ज़मीन को तीन हिस्सों में बाँटा गया था। तीनों में क्रमशः धनिया, हरी मिर्च तथा लहसुन लगाए गए थे। इनकी पूरी ज़िम्मेदारी हम बच्चों पर थी। अपने घरों से शनिवार के दिन बच्चे मूठ भर चावल लाते। प्रिंसिपल साहब स्कूल में ही उसे भुनवाते। अपने हाथों से धनिया, मिर्च, लहसुन (नमक के साथ) की चटनी बनाते और सभी बच्चों को आमंत्रित करते। हिस्से में बहुत थोड़ा

आने पर भी हम शनिवार के उस चटखारे के लिए बेताब रहते।

### ये उन दिनों की बात है

विश्वविद्यालयों में पुरानी यादों को ताज़ा करने का एक रास्ता है — भूतपूर्व छात्र परिषद् (Alumni Association)। विश्वविद्यालय वो अंतिम जगह है जहाँ से कोई शाख्स उच्च शिक्षा लेकर बाहर निकलता है। किसी मौके पर पुराने लोगों से मिलना और फिर पुरानी यादों को याद करके प्रफुल्लित होना तन-मन को हवा-सा कर जाता है।

ज़रा गौर करिए, इसी तरह अगर स्कूल के साथी मिल जाएँ और वो बचपन के स्कूली दिन याद हों तो

क्या बात हो। पर उसके लिए ज़रूरी है यादगार स्कूली पलों का होना। आपने ऐसे दिन स्कूल में बिताए हों जिन्हें वाकई आप बार-बार याद करना चाहते हों। ऐसे दिन बच्चों को हम शिक्षक ही दे सकते हैं। ताकि समय के किसी अगले मोड़ पर रोज़ी-रोटी की तलाश से फुरसत का एक पल मिलने पर बच्चा (वयस्क) स्कूल के दिनों को याद करके ये कह सके — ये उन दिनों की बात है।

### उपसंहार

सारी चर्चा का लुब्बे-लुबाब (सार) ये है कि मासूम बचपन को हर संभव उपाय करके बोझ तले दबने से बचाया जाए।

### संदर्भ

- कुरोपानागी, तेत्सुको. 2017. *तोतो चान*. अनुवादक, पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा. राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत.
- बधेका, गिजुभाई. 1988. *दिवास्वप्न*. उत्तर प्रदेश बाल कल्याण समिति, मोती महल, लखनऊ.
- बाजपेयी, एल.बी और अभिता बाजपेयी. 2000. *विशिष्ट बालक*. भारत बुक सेंटर, लखनऊ.
- मानव संसाधन विकास मंत्रालय. 1993. *यशपाल समिति की रिपोर्ट, 1993*. एम.एच.आर.डी., भारत सरकार, नयी दिल्ली.
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. 2006. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा 2005*. रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली.

# विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का संवेगात्मक बुद्धि और उपलब्धि अभिप्रेरण के साथ संबंध

निशा मिश्रा\*  
पूनम शर्मा\*\*

वर्तमान समय में सफलता उच्च स्तरीय जीवन का पर्याय बन गई है। आज हर व्यक्ति अपनी सफलता के लिए निरंतर प्रयास करता रहता है। विभिन्न विद्वानों एवं शोधकों का मानना है कि शैक्षिक सफलता सफल भविष्य की सूचक है, इसी कारण विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि शोधकों को सदैव आकर्षित करती रही है। शिक्षा जगत में हुए शोधों से यह पाया गया कि शैक्षिक उपलब्धि कई संज्ञानात्मक तथा गैर-संज्ञानात्मक कारकों द्वारा प्रभावित होती है। यह शोध पत्र संवेगात्मक बुद्धि तथा उपलब्धि अभिप्रेरण (गैर-संज्ञानात्मक) जैसे कारकों का शैक्षिक उपलब्धि के मध्य संबंध को प्रदर्शित करता है। यह शोध कार्य दिल्ली राजधानी क्षेत्र के सरकारी और गैर-सरकारी तथा आवासीय और गैर-आवासीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के कक्षा 11वीं के 892 विद्यार्थियों के न्यादर्श पर किया गया था। संवेगात्मक बुद्धि गुणांक का मापन करने के लिए शोधकों ने वर्ष (2014) में निर्मित अरुण कुमार के “इमोशनल इंटेलिजेंस स्केल” का प्रयोग किया। उपलब्धि अभिप्रेरण की गणना करने हेतु प्रतिभा देओ (2011) द्वारा निर्मित “एचीवमेंट मोटीवेशन स्केल” का प्रयोग किया गया तथा विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के लिए विद्यार्थियों के दसवीं कक्षा की वार्षिक परीक्षा में प्राप्त सी.जी.पी.ए (क्यूम्यूलेटिव ग्रेड पॉइंट्स एवरेज) अंकों को लिया गया। आँकड़ों के विश्लेषण के पश्चात् परिणाम प्राप्त हुए कि विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का संवेगात्मक बुद्धि तथा उपलब्धि अभिप्रेरण के साथ सार्थक संबंध है।

मनुष्य द्वारा प्राप्त की गई सफलता उसके जीवन में अहम भूमिका का निर्वहन करती है। यह मानव द्वारा की गई कठोर मेहनत, उसकी सच्ची निष्ठा और लगन, उसकी योग्यता, सकारात्मक व्यवहार तथा बौद्धिक स्तर को प्रमाणित करती है। सफलता मनुष्य को प्रगति के पथ पर नियमित रूप से अग्रसर रखने का कार्य करती है। अतः कामयाबी के उच्चतम पायदान पर पहुँचना मानव की प्रमुख अभिलाषाओं में से एक है। सफलता को बहुत-से कारक प्रभावित करते हैं; जहाँ संज्ञानात्मक कारक अपनी प्रभावशीलता के लिए प्रसिद्ध है, वहीं गैर-संज्ञानात्मक कारकों का मूल्य भी कम नहीं आँका जा सकता। विश्व स्तरीय

\* सहायक प्राध्यापक, लीलावती मुंशी कॉलेज ऑफ़ एजुकेशन, के. जी. मार्ग, नयी दिल्ली – 110 001

\*\* सहायक प्राध्यापक, लीलावती मुंशी कॉलेज ऑफ़ एजुकेशन, के. जी. मार्ग, नयी दिल्ली – 110 001

शोध कार्यो ने गैर संज्ञानात्मक कारकों, जैसे— संवेगात्मक बुद्धि, अभिप्रेरण, पढ़ने की आदत, व्यक्तित्व, वातावरण, अभिभावकों का व्यवहार, आदि के महत्व को स्वीकार किया है।

### संवेगात्मक बुद्धि

प्रकृति ने इस संपूर्ण जीव जगत को भावना प्रधान बनाया है। भावनाएँ मनुष्य के व्यक्तित्व की पहचान होती हैं। अतः कामयाबी के उच्चतम पायदान पर कभी तो ये उसकी सफलता का पर्याय बन जाती हैं, तो कभी पैरों की बेड़ियाँ। बबली आर. रश्मि एस. व सपना एस. (2013), युसुफ, एच. टी., युसुफ, ए., गंबरी, ए. आई. (2015), भदौरिया, पी. (2013), मैज़तुल अकमल मोहम्मद और अन्य के द्वारा किए गए (2013) अनेक शोधों ने यह सिद्ध किया है कि जो व्यक्ति अपने संवेगों पर अवसरानुकूल नियंत्रण रखने में सफल हो जाता है, वह जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी सफलता का पताका फहरा पाता है। भावनात्मक बुद्धि जहाँ एक ओर विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का महत्वपूर्ण सूचक है, वहीं यह विद्यार्थियों की शारीरिक, मानसिक, मनोवैज्ञानिक स्वस्थता का भी परिचायक है। अपने इसी गुण के कारण वर्तमान कुछ दशकों से यह बुद्धिलब्धि गुणांक से अधिक महत्वपूर्ण माना जाने लगा है (गोलमेन, डी., 1995)।

आर. बार-ऑन सन (1980) ने भी पाया कि मनुष्य के जीवन में बहुत-से गैर-संज्ञानात्मक कारक सफलता को प्रभावित करते हैं, फिर उन्होंने वर्ष (1985) में *इमोशनल क्योशेन्ट्स* (संवेगात्मक गुणांक) शब्द की व्याख्या की और संवेगात्मक बुद्धि को विशिष्ट योग्यता के रूप में बताते हुए कहा कि,

यह योग्यता न केवल मानव में समझौता करने की काबिलियत पैदा करती है, बल्कि स्वयं पर नियंत्रण रखते हुए प्रगति के पथ पर आगे बढ़ना भी सिखाती है। हिग्स और डूलेविच्ज़ (Higgs and Dulewicz 1999) ने *इमोशनल इंटेलिजेंस* को विस्तृत रूप से पारिभाषित किया और माना कि संवेगात्मक बुद्धि अपनी भावनाओं को समझने और उनसे प्रभावित हुए बिना उन्हें संभालने की योग्यता है, जो उन्हें कार्य पूर्ण करने, संबंधों को संभालने व दूसरों की भावनाओं को समझने की शक्ति देती है।

वैसे तो भावनात्मक बुद्धि विषय पर बहुत काम हो रहा था, परंतु इस शब्द और इस सिद्धांत को शिक्षा व व्यावसायिक जगत में प्रसिद्ध करने का श्रेय 'डेनियल गोलमेन' को जाता है। उन्होंने वर्ष 1995 में प्रकाशित अपनी प्रसिद्ध पुस्तक *इमोशनल इंटेलिजेंस—व्हाई इट कैन मैटर मोर दैन आई क्यू* (गोलमेन, डी., 1995) के द्वारा इस सिद्धांत को फैला कर शैक्षिक व व्यावसायिक जगत में शोध के नए आयाम खोल दिए। उन्होंने अपनी पुस्तक *वॉट मेक्स ए लीडर* के द्वारा, प्रतिभा व समझ के महत्व के साथ-साथ सफलता और संतोष के लिए भावनात्मक समझ के महत्व पर भी प्रकाश डाला।

भावनात्मक बुद्धि गुणांक का अर्थ उस योग्यता से है जिसके कारण मानव अपनी भिन्न-भिन्न भावनाओं, जैसे—प्रेम, खुशी, गुस्सा, उल्लास, जोश, चिंता, नफ़रत आदि को पहचान कर, समझदारी व विवेकपूर्ण रूप से उन्हें निर्देशित करता है ताकि उसकी प्रगति सुनिश्चित हो सके। साथ ही इस योग्यता के बल पर वह दूसरों के साथ उचित व्यवहार का प्रदर्शन करता है जिससे वह अपने

चारों ओर एक स्वस्थ वातावरण को तैयार करने में सक्षम हो पाता है। यह वातावरण उसकी भविष्य की सफलताओं को सुनिश्चित करने में सहायक रहता है। भावनात्मक बुद्धि मनुष्य के चहुँमुखी विकास के लिए आवश्यक योग्यता है। यह मनुष्य को समाज, परिवार व्यवसाय तथा व्यक्तिगत जीवन में अनेक लाभ पहुँचाती है। अपने संवेगों को समझना, उन पर काबू पाना, फिर उनका उचित प्रबंधन व संचालन करना ही भावनात्मक समझ है। व्यक्ति अपनी 'भावनात्मक समझ' का प्रयोग कर अपने कुशल व्यवहार का उदाहरण रख सकता है तथा अपने समाज व परिवेश में विशिष्ट स्थान प्राप्त कर सकता है। शोधों द्वारा यह प्रमाणित हो गया है कि मानव में बुद्धि लब्धि गुणांक जन्मजात होता है तथा इसे बढ़ाया नहीं जा सकता, परंतु संवेगात्मक बुद्धि की मुख्य विशेषता यह है कि इसका विकास किया जा सकता है तथा यह मानव की सफलता को अधिक प्रभावित करती है। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण वर्तमान समय में यह शोधकों के मध्य आकर्षण का बिंदु बनी हुई है।

व्यक्ति के भावनात्मक पक्ष पर आधारित योग्यताओं व शील गुणों के समूह ही भावनात्मक बुद्धि है। संवेगात्मक बुद्धि की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं —

- भावनात्मक बुद्धि, सामाजिक समझ का ही एक प्रकार है जो इनसान को अपने तथा दूसरों के विचारों को समझने की समझ पैदा करती है।
- यह बुद्धि विभेदक क्षमता उत्पन्न करती है। इससे मिली सूचनाओं के आधार पर कोई मनुष्य अपने चिंतन एवं क्रियाओं को निर्देशित करता है।
- भावनात्मक समझ संवेगों को समझने, पहचानने, निर्देशित, प्रबंधित, संचालित करने में सहायता करती है।

- यह आई. क्यू. से अधिक महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि यह जीवन के अनेक क्षेत्रों में सफलता दिलाने में सहायक है।

### उपलब्धि अभिप्रेरण

आज के प्रतियोगितावादी व लक्ष्य-केंद्रित विश्व में हर व्यक्ति की कामना उच्च उपलब्धि की प्राप्ति होती है। कार्य को सफलतापूर्वक उच्च उपलब्धि के साथ पूरा करना व्यक्तिगत प्रगति ही नहीं, वरन् राष्ट्र की तरक्की का द्योतक है। अभिप्रेरण मनुष्य की विभिन्न इच्छाओं, कार्यों और लक्ष्यों का प्रमुख कारण है।

उपलब्धि अभिप्रेरण एक मनोवैज्ञानिक आंतरिक चालक है जो एक व्यक्ति को सफलतापूर्वक कार्य करने के लिए निरंतर प्रेरित करता है (मैक क्लेल्लैंड, 1961; मैक क्लेल्लैंड और विंटर 1969)। इसके अतिरिक्त उपलब्धि अभिप्रेरण दूसरों के साथ तुलना और एक स्वस्थ प्रतिस्पर्धा करने की मनोवृत्ति भी है। उपलब्धि अभिप्रेरण को बेहतर प्रदर्शन तथा कामयाबी के लिए किए गए निरंतर प्रयास के रूप में समझा जा सकता है (मैक क्लेल्लैंड, 1985)। यह मानवीय समस्त अभिप्रेरण का केंद्र बिंदु है, क्योंकि उपलब्धि के लिए प्रेरित मनुष्य किसी भी बाधा से घबराता नहीं है और अपने लक्ष्य के प्रति सदैव उत्साहित रहता है तथा दूसरों से बेहतर काम करने के लिए, उन्हें पछाड़ने के लिए और अपने अद्भुत कार्यों से सभी को चकित करने के लिए तत्पर रहता है। [स्मिदत (Schmidt) और फ्रीज़, 1997]। अमेरिकी मनोवैज्ञानिक डेविड मैक क्लेल्लैंड ने अभिप्रेरणात्मक आवश्यकताओं से संबंधित शोध में उपलब्धि की प्रेरणा (उपलब्धि अभिप्रेरण) को

मुख्य आवश्यकता माना। उन्होंने माना कि लोगों में कुछ पाने की चाह सदैव रहती है। उन्होंने उपलब्धि अभिप्रेरण की चार मुख्य विशेषताएँ बताई —

- औसत जटिलता वाले कार्य के लिए प्रयासरत रहना;
- स्वयं की उपलब्धि के प्रति जिम्मेदारी;
- प्रतिपुष्टि की आवश्यकता; और
- नवाचार और रचनात्मकता का प्रयोग।

### समस्यात्मक कथन

इस शोध अध्ययन का समस्या कथन था, “विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का संवेगात्मक बुद्धि और उपलब्धि अभिप्रेरण के साथ संबंध।”

### शोध का औचित्य

जहाँ एक ओर मानव की भावनाएँ उसके काम, व्यवहार और शिक्षा में हस्तक्षेप करती हैं, वहीं उसका अभिप्रेरण का स्तर उसकी सफलता का निर्धारण करता है। संवेगात्मक बुद्धि मानव को अपने संवेगों को नियंत्रित करके उचित निर्णय लेने में सहयोग करती है तो उच्च अभिप्रेरण निरंतर सफलता की दिशा में स्वयं को अग्रसर रहने के लिए प्रेरित रखती है। अतः ये दोनों ही गैर-संज्ञानात्मक चर, विद्यार्थियों की उपलब्धि के प्रमुख निर्धारक हैं। इन चरों पर आधारित अनेक शोध कार्य हुए हैं। परंतु दोनों चरों का एक साथ अध्ययन कम हुआ है। अतः शोधक द्वारा दिल्ली राजधानी क्षेत्र के उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि और उनकी उपलब्धि के साथ संबंधों पर अध्ययन किया गया। इस शोध का मुख्य उद्देश्य संवेगात्मक बुद्धि तथा उपलब्धि अभिप्रेरण और शैक्षिक उपलब्धि के मध्य संबंध को देखना था।

### साहित्य की समीक्षा

#### संवेगात्मक बुद्धि

अमालू एन. मेलविना (2018) ने वर्णनात्मक शोध सर्वेक्षण द्वारा प्रमाणित किया कि संवेगात्मक बुद्धि के सभी तत्व, जैसे — संवेगों का प्रबंधन, स्वयं का अभिप्रेरण, सामाजिक कौशल, समानुभूति एवं आत्म जागरूक शैक्षिक उपलब्धि पर सम्मिलित रूप से प्रभाव डालते हैं। अनुसंधान से आए परिणामों के आधार पर शोधक ने वर्तमान शैक्षिक कार्यक्रम में संवेगात्मक बुद्धि को बढ़ाने के लिए कार्यक्रमों को रखने की सिफारिशें की। सप्रे, मिनी (2018) ने अपने शोध कार्य में यह पाया कि *इमोशनल इंटेलिजेंस* का चिंता, तनाव और उदासी के साथ विपरीत संबंध है। ये तत्व मनुष्य के संवेगों को स्थिर नहीं रहने देते तथा ये उनके कार्यों को प्रभावित करते हैं। एक अन्य शोध के अनुसार (बबली आर., रश्मि एस. और सपना एस. 2013) *इमोशनल इंटेलिजेंस* तथा शैक्षिक उपलब्धि के बीच में सकारात्मक संबंध है। साथ ही उनकी खोज इस बात का भी खुलासा करती है कि उपलब्धि अभिप्रेरण और संवेगात्मक बुद्धि में धनात्मक संबंध है। यह शोध कार्य इस बात का भी पक्षधर है कि उच्च, औसत तथा निम्न शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरण वाले विद्यार्थियों का संवेगात्मक बुद्धि गुणांक भी भिन्न होता है। संवेगात्मक बुद्धि विद्यार्थियों की शैक्षिक सफलता के प्रमुख कारणों में से एक है। शोध यह तथ्य भी प्रदर्शित करता है कि लड़कियों का माध्य स्कोर, लड़कों के माध्य स्कोर से कम है। भदौरिया, प्रीति (2013) इस बात पर जोर देती हैं कि भावनात्मक बुद्धि व सामाजिक कौशल विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के साथ-साथ



उनकी भविष्य की उपलब्धि पर भी अपना प्रभाव डालती है। इस अन्वेषण के अनुसार संवेगात्मक बुद्धि के अभाव में विद्यार्थियों की सफलता की संभावना कम होती है, साथ ही इसकी कमी कमजोर व्यक्तित्व व योग्यताओं के अभाव की ओर इंगित करती है।

मैज़तुल, अकमल मोहम्मद, मोहज़न नोर्हस्लिंदा हसन, नोर्हफ़जाह अब्दुल हलील (2013) ने अपने शोध द्वारा सिफ़ारिश की कि संवेगात्मक बुद्धि के मूल्यों का परिपालन महत्वपूर्ण है तथा शैक्षिक उपलब्धि को बढ़ाने में इसकी उपयोगिता को स्वीकारा है। आँकड़ों से आए नतीजों से उन्होंने यह भी खुलासा किया कि संवेगात्मक बुद्धि के दो कार्यक्षेत्रों (भावों की समझ और स्वयं के भावों का मूल्यांकन) का सीधा संबंध विद्यार्थियों की उपलब्धि के साथ है। युसुफ, एच टी., युसुफ, ए., गंबरी, ए. आई. (2015) ने विद्यार्थी-शिक्षकों के संवेगात्मक बुद्धि लब्धि गुणांक का उनकी भविष्य उत्पादकता के प्रभाव का अध्ययन किया। इस अध्ययन में जेंडर के आधार पर संवेगात्मक गुणांक में सार्थक अंतर पाया गया। यह खोज वकालत करती है कि भावनात्मक रूप से बुद्धिमान विद्यार्थी-शिक्षक अधिक सफलता प्राप्त करने वाला होता है। लब्बी एस. लूनेंबुर्ग एफ़. सी. स्लेट जे. आर. (2012) खोजकर्ताओं ने इस बात को स्वीकारा कि संवेगात्मक बुद्धि शैक्षिक योग्यताओं के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस खोज में यह पाया गया है कि विद्यालयों के प्रबंधकों द्वारा संवेगात्मक बौद्धिक कौशल के विकास पर कम ध्यान दिया जा रहा है। अनुसंधानकर्ताओं ने विद्यालयों में संवेगात्मक बौद्धिक कौशल के सफल परिपालन के लिए विद्यालय के प्रधानाचार्य को जिम्मेदार माना है।

बा. ए. फ़ातुम (2008) ने अपने शोध कार्य द्वारा यह खुलासा किया कि जिन विद्यार्थियों ने संवेगात्मक बुद्धि परीक्षण में अधिक योग्यता प्रदर्शित की, वे उसकी झलक अन्य शैक्षिक परीक्षाओं में प्रदर्शित करने में भी सफल रहे। एक विशेष शोध के अनुसार वो छात्र जो शैक्षिक क्षेत्र में खतरे में हैं यानि जिनके फ़ेल होने या विद्यालय छोड़ने का डर बना रहता है, उनकी संवेगात्मक बुद्धि का प्रभाव भी उनकी उपलब्धि पर पड़ता है। इसके अतिरिक्त इस शोध के परिणाम इस बात की भी वकालत करते हैं कि शिक्षकों के भावनात्मक बुद्धि लब्धि गुणांक और विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि में गहरा संबंध है (लेस्ली के, 2007)।

### **उपलब्धि अभिप्रेरण**

मैक क्लेल्लैंड, 1961; मैक क्लेल्लैंड और विंटर 1961 के अनुसार उपलब्धि की आवश्यकता मनोवैज्ञानिक है जो मनुष्य की सफलता और लक्ष्य प्राप्ति में बहुत महत्वपूर्ण है। कुमारी कल्पना और कासिम एस.एच. (2015) ने अपने शोध कार्य में पाया कि उपलब्धि अभिप्रेरण शैक्षिक उपलब्धि के लिए बहुत आवश्यक है। उन्होंने स्टेकहोल्डर्स, शिक्षाशास्त्रियों, शिक्षकों आदि से सिफ़ारिश की है कि विद्यार्थियों की उपलब्धि को बढ़ाने के लिए उन्हें लगातार प्रोत्साहित करना चाहिए। कोज़िमन्सकी एस. के. (2010) ने उपलब्धि अभिप्रेरण को मनोवैज्ञानिक रूप से परिभाषित किया और विद्यार्थियों के शैक्षिक स्तर और विद्यालयी कार्यक्रम में उनके प्रदर्शन पर अभिप्रेरण के प्रभाव की चर्चा की। इस शोध के अनुसार उपलब्धि अभिप्रेरण, विद्यार्थियों की सफलता और विफलता का महत्वपूर्ण

प्रासूचक होता है। सेथ आर. लैंगली, विलियम एम. बार्ट (2017) ने अपने अनुसंधान कार्य से यह जानने का प्रयत्न किया कि उच्च व निम्न उपलब्धि वाले विद्यार्थी किस प्रकार अधिगम विश्वास, स्वयं को संचालित करने, स्वयं को अभिप्रेरित करने में भिन्न हैं? अवान, रिफ़क्त-उन-मिसा, नौरीन, गज़ाला और मिस. नाज़ अंजुम (2011) ने अपनी खोज में उपलब्धि अभिप्रेरण व स्वयं की समझ के मध्य संबंधों की जाँच करने का प्रयत्न किया। इस खोज के परिणामों ने खुलासा किया कि दोनों स्वतंत्र चर, विद्यार्थियों के शैक्षिक प्रदर्शन से सीधे संबंधित हैं। साथ ही जेंडर के आधार पर सार्थक अंतर भी पाया गया, जिसमें लड़कियों का पलड़ा अधिक भारी था। इलियट और मैक ग्रेगोर (2001) ने अपने उपलब्धि के मॉडल में दो मुख्य लक्ष्यों की व्याख्या की — मास्टरी लक्ष्य और उपलब्धि लक्ष्य। मास्टरी लक्ष्य किसी कार्य को करने में मास्टरी हासिल करना जबकि उपलब्धि लक्ष्य किसी कार्य को दूसरों से बेहतर तरीके से क्रियान्वित करने से है। शोधकों ने वकालत की कि जब भी विद्यार्थी किसी शैक्षिक कार्य में लगे होते हैं, वे अपने लिए लक्ष्यों का निर्धारण करते हैं और ये लक्ष्य उनकी शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करते हैं। मेहर (2008) के अनुसार, उपलब्धि अभिप्रेरण व्यापक रूप से सामाजिक मनोविज्ञान से संबंधित है, क्योंकि ये अधिकतर समूहों में ही होते हैं।

### शोध उद्देश्य

इस शोध का उद्देश्य निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर ज्ञात करना था —

- क्या संवेगात्मक बुद्धि और उपलब्धि अभिप्रेरण का शैक्षिक उपलब्धि के साथ सार्थक संबंध है?
- क्या लड़कों और लड़कियों की संवेगात्मक बुद्धि, उपलब्धि अभिप्रेरण और शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर है?
- क्या सरकारी और गैर-सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि, उपलब्धि अभिप्रेरण और शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर है?
- क्या आवासीय और गैर-आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि, उपलब्धि अभिप्रेरण और शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर है?

### परिकल्पनाएँ

इस शोध अध्ययन की निम्न शून्य परिकल्पनाएँ थीं —

- H<sub>01</sub>—संवेगात्मक बुद्धि और उपलब्धि अभिप्रेरण का शैक्षिक उपलब्धि के साथ सार्थक संबंध है।
- H<sub>02</sub>—लड़कों और लड़कियों की संवेगात्मक बुद्धि, उपलब्धि अभिप्रेरण और शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं है।
- H<sub>02(1)</sub>—लड़कों और लड़कियों की संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अंतर नहीं है।
- H<sub>02(2)</sub>—लड़कों और लड़कियों की उपलब्धि अभिप्रेरण में सार्थक अंतर नहीं है।
- H<sub>02(3)</sub>—लड़कों और लड़कियों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं है।
- H<sub>03</sub>—सरकारी और गैर-सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि, उपलब्धि अभिप्रेरण और शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं है।

- H<sub>0</sub>3(1)—सरकारी और गैर-सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अंतर नहीं है।
- H<sub>0</sub>3(2)—सरकारी और गैर-सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों की उपलब्धि अभिप्रेरण में सार्थक अंतर नहीं है।
- H<sub>0</sub>3(3)—सरकारी और गैर-सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं है।
- H<sub>0</sub>4—आवासीय और गैर-आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि, उपलब्धि अभिप्रेरण और शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं है।
- H<sub>0</sub>4(1)—आवासीय और गैर-आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि में सार्थक अंतर नहीं है।
- H<sub>0</sub>4(2)—आवासीय और गैर-आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की उपलब्धि अभिप्रेरण में सार्थक अंतर नहीं है।
- H<sub>0</sub>4(3)—आवासीय और गैर-आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं है।

### शोध अध्ययन का प्रारूप

इस शोध में वर्णनात्मक-सहसंबंध विधि का प्रयोग करके दो स्वतंत्र चरों, संवेगात्मक बुद्धि और उपलब्धि अभिप्रेरण का परस्पर चर, विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के साथ संबंध की जाँच की गई। साथ ही इस शोध कार्य में ये भी ज्ञात करने का प्रयत्न किया गया कि जेंडर, विद्यालयों के प्रकार

तथा आवासीय भिन्नता के आधार पर विद्यार्थियों के संवेगात्मक बुद्धि लब्धि और उपलब्धि अभिप्रेरण में सार्थक अंतर है या नहीं।

### सैंपलिंग तकनीक

इस शोध में आँकड़े एकत्रित करने के लिए साधारण यादृच्छिक प्रणाली अपनाई गई थी। दिल्ली राजधानी क्षेत्र से सरकारी तथा गैर-सरकारी (प्राइवेट) विद्यालय के कक्षा 11 के 892 विद्यार्थियों को चुना गया।

### न्यादर्श संकलन

न्यादर्श संकलन हेतु प्रश्नावली का प्रयोग किया गया। दिल्ली राजधानी क्षेत्र के छह सरकारी और गैर-सरकारी क्षेत्र में लगभग 956 प्रश्नावली भेजी गई थी। इनमें से 934 भरी हुई प्रश्नावली प्राप्त हुई। जिसमें से शुद्ध न्यादर्श के रूप में 896 को चुना गया। इसमें 446 लड़कियाँ और 446 लड़के शामिल थे। सरकारी और गैर-सरकारी विद्यार्थियों की संख्या क्रमशः 411 और 481 थी। आवासीय और गैर-आवासीय विद्यार्थियों की संख्या क्रमशः 429 तथा 463 थी।

### शोध उपकरण

#### संवेगात्मक बुद्धि

शोध में संवेगात्मक बुद्धि का परीक्षण करने के लिए अरुण कुमार के द्वारा बनाया गया मानक प्रश्न पत्र 'इमोशनल इंटेलिजेंस स्केल' (2014) का प्रयोग किया गया।

#### उपलब्धि अभिप्रेरण

उपलब्धि अभिप्रेरण की गणना करने हेतु प्रतिभा देओ द्वारा निर्मित मानक प्रश्न पत्र 'एचिवमेंट मोटिवेशन स्केल' का प्रयोग किया गया।

### शैक्षिक उपलब्धि

विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि ज्ञात करने के लिए विद्यार्थियों के कक्षा 10 के वार्षिक परीक्षा के अंक (CGPA) एकत्रित किए गए।

### आँकड़ों का विश्लेषण एवं परिणाम

#### परिकल्पना H<sub>01</sub> — विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि और उपलब्धि अभिप्रेरण का उनकी शैक्षिक उपलब्धि के साथ सार्थक संबंध है

तालिका 1 का अवलोकन करने के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि संवेगात्मक बुद्धि और उपलब्धि अभिप्रेरण का शैक्षिक उपलब्धि के साथ धनात्मक सहसंबंध है। यह सहसंबंध 0.01 स्तर पर सार्थक है। अतः प्रथम परिकल्पना कि संवेगात्मक बुद्धि और उपलब्धि अभिप्रेरण का शैक्षिक उपलब्धि के साथ सार्थक संबंध है, स्वीकृत की जाती है। साथ ही, तालिका 1 दर्शाती है कि संवेगात्मक बुद्धि का शैक्षिक उपलब्धि के साथ एक कमजोर सकारात्मक रेखीय संबंध है, जबकि उपलब्धि अभिप्रेरण और शैक्षिक उपलब्धि अपेक्षाकृत थोड़ा-सा अधिक मजबूत है। शोधक ने यह पाया कि जहाँ एक ओर संवेगात्मक बुद्धि

विद्यार्थियों को संवेगों पर संतुलन रखकर सफलता की ओर प्रयासरत रखती है, वहीं उपलब्धि के लिए अभिप्रेरित व्यवहार उसे लगातार अच्छा प्रदर्शन करने के लिए प्रेरित करता है। परंतु कमजोर संबंध निश्चित तौर पर इस ओर भी इशारा कर रहा है कि विद्यार्थियों की उपलब्धि को प्रभावित करने वाले अन्य कई आवश्यक कारक भी हैं।

#### परिकल्पना H<sub>02</sub> — लड़कों और लड़कियों की संवेगात्मक बुद्धि, उपलब्धि अभिप्रेरण और शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं है

तालिका 2 में लेवेंस टेस्ट के परिणामों को ध्यानपूर्वक देखने के बाद ज्ञात होता है कि F मूल्य जो क्रमशः .094, 1.118 और .067 है, जो .05 सांख्यिकता स्तर पर सांख्यिक है और यह प्रदर्शित करता है कि शून्य परिकल्पना कि समूहों में परिवर्तनशीलता समान है, अस्वीकृत नहीं होती है। अतः कहा जा सकता है कि समूहों में सजातीयता विद्यमान है तथा प्रस्तुत चरों में 't' मान की गणना की जा सकती है।

लड़कों और लड़कियों के भावात्मक बुद्धि लब्धि गुणांक व शैक्षिक उपलब्धि का 't' मान 1.528 और 1.258 है, जो .05 के सांख्यिकता स्तर

तालिका 1 — संवेगात्मक बुद्धि, उपलब्धि अभिप्रेरण और शैक्षिक उपलब्धि का पारस्परिक सहसंबंध

		शैक्षिक उपलब्धि	उपलब्धि अभिप्रेरण	संवेगात्मक बुद्धि
संवेगात्मक बुद्धि	पियर्सन सहसंबंध	.263**	.300**	1
	सार्थक (द्वि-पूछ)	.000	.000	
उपलब्धि अभिप्रेरण	पियर्सन सहसंबंध	.352**	1	.300**
	सार्थक (द्वि-पूछ)	.000		.000
शैक्षिक उपलब्धि	पियर्सन सहसंबंध	1	.352**	.263**
	सार्थक (द्वि-पूछ)		.000	.000

\*\* द्वि-पूछ 0.01 सांख्यिकता के स्तर पर सार्थक सहसंबंध, N=892

**तालिका 2 — लड़कियों और लड़कों के मध्य संवेगात्मक बुद्धि,  
उपलब्धि अभिप्रेरण और शैक्षिक उपलब्धि की तुलना**

	विभिन्न पैमाने	लड़कियों (N=446)		लड़के (N=446)		't' मान	लेवेंस टेस्ट मान
		माध्य	मानक विचलन	माध्य	मानक विचलन		
(अ)	संवेगात्मक बुद्धि	73.48	7.36	72.72	7.49	1.528	.094*
(ब)	उपलब्धि अभिप्रेरण	141.85	16.76	132.39	19.17	7.846**	1.118*
(स)	शैक्षिक उपलब्धि	74.98	10.56	74.09	10.60	1.258	.067*

\*\* सार्थकता स्तर= .01, \*सार्थकता स्तर= .05

पर सार्थक नहीं है। यह प्रमाणित करता है कि संबद्ध आँकड़ों में लड़कों और लड़कियों की संवेगात्मक बुद्धि और शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अंतर नहीं है। अतः पंक्ति 'अ' और 'स' दर्शाती हैं कि परिकल्पना H<sub>0</sub>2(1), H<sub>0</sub>2(3) कि लड़कों और लड़कियों की संवेगात्मक बुद्धि और शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं है, अस्वीकृत नहीं होती है। जबकि पंक्ति 'ब' दर्शाती है कि अभिप्रेरण उपलब्धि गुणांक का 't' मान 7.846 है, जो .01 सार्थकता स्तर पर सार्थक है। इसलिए कहा जा सकता है कि परिकल्पना H<sub>0</sub>2(2) कि लड़कों और लड़कियों की अभिप्रेरण उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं है, अस्वीकृत होती है।

तालिका 2 को ध्यानपूर्वक देखने के बाद यह भी ज्ञात होता है कि लड़कियों के संवेगात्मक बुद्धि लब्धि, उपलब्धि अभिप्रेरण और शैक्षिक उपलब्धि के अंकों का माध्य क्रमशः 73.48, 141.85 और 74.98 है, तो वहीं लड़कों की संवेगात्मक बुद्धि लब्धि, उपलब्धि अभिप्रेरण और शैक्षिक उपलब्धि के अंकों का माध्य क्रमशः 72.72, 132.39 और 74.09 है। इनका माध्य मूल्य बताता है कि लड़के

और लड़कियों के संवेगात्मक बुद्धि और शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं है। इसके कई कारण हो सकते हैं। यह शोध कार्य राजधानी क्षेत्र में हुआ है, जहाँ वर्तमान दृष्टिकोण में होने वाले परिवर्तन के कारण लैंगिक असमानता में सार्थक अंतर न पाया जाना एक अच्छा सूचक है। अपने संवेगों पर नियंत्रण रखने का जो भी प्रशिक्षण दिया जा रहा है, वह लड़के और लड़कियों के लिए लगभग समान है। साथ ही शैक्षिक उपलब्धि में समानता का कारण दसवीं कक्षा में दिया गया प्रशिक्षण हो सकता है। परंतु उपलब्धि अभिप्रेरण का माध्य मूल्य बताता है कि लड़कियों का उपलब्धि गुणांक लड़कों की अपेक्षा अधिक है अर्थात् लड़कियाँ उपलब्धि के प्रति अधिक अभिप्रेरित हैं। इसका कारण निश्चित तौर पर लड़कियों के साथ किया जाने वाला व्यवहार है, जिसमें उन्हें अभिप्रेरित किया जाता रहता है। आज भी समाज में अपनी पहचान बनाने के लिए व सफलता प्राप्त करने के लिए लड़कियों को अधिक संघर्ष करना पड़ता है और किशोरावस्था में ही वह इस बात से भली-भाँति परिचित हो जाती हैं।

**परिकल्पना H<sub>03</sub> — सरकारी और गैर-सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि, उपलब्धि अभिप्रेरण और शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं है**

तालिका 3 में लेवेंस टेस्ट के परिणामों को ध्यानपूर्वक देखने के बाद ज्ञात होता है कि F मूल्य जो क्रमशः 1.141, .006 और 1.207 है जो .05 सार्थकता स्तर पर सार्थक है। जो दर्शाता है कि शून्य परिकल्पना के समूहों में परिवर्तनशीलता समान है, अस्वीकृत नहीं होती। अतः कहा जा सकता है कि समूहों में सजातीयता विद्यमान है।

पंक्ति 'अ' व 'स', सरकारी और गैर-सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों के संवेगात्मक बुद्धि लब्धि तथा शैक्षिक उपलब्धि का 't' मान 7.084 और -5.223 है जो 0.01 के सार्थकता स्तर पर सार्थक है। यह प्रमाणित करता है कि संबंधित आँकड़ों में सरकारी और गैर-सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों के संवेगात्मक बुद्धि और शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर है। जबकि पंक्तियाँ 'अ' और 'ब' दर्शाती हैं कि परिकल्पना H<sub>03</sub>(1), H<sub>03</sub>(3) कि सरकारी और

गैर-सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि और शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं है, अस्वीकृत होती है। जबकि पंक्ति 'ब' दर्शाती है कि उपलब्धि अभिप्रेरण का 't' मान -.302 जो 0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं है। अतः परिकल्पना H<sub>03</sub>(2) कि सरकारी और गैर-सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों की उपलब्धि अभिप्रेरण में सार्थक अंतर नहीं है, अस्वीकृत नहीं होती।

तालिका 3 को ध्यानपूर्वक देखने के बाद यह भी ज्ञात होता है कि सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि लब्धि, उपलब्धि अभिप्रेरण और शैक्षिक उपलब्धि के अंकों का माध्य क्रमशः 74.96, 136.92 और 72.56 है, तो वहीं गैर-सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि लब्धि, उपलब्धि अभिप्रेरण और शैक्षिक उपलब्धि के अंकों का माध्य क्रमशः 71.51, 137.29 और 76.22 है। इनका माध्य मूल्य बताता है कि सरकारी और गैर-सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि और शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर है। जबकि उपलब्धि अभिप्रेरण के माध्य में

**तालिका 3 — सरकारी और गैर-सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों के मध्य संवेगात्मक बुद्धि, उपलब्धि अभिप्रेरण और शैक्षिक उपलब्धि की तुलना**

	विभिन्न पैमाने	सरकारी विद्यालय के विद्यार्थी (N=411)		गैर-सरकारी विद्यालय के विद्यार्थी (N=481)		't' मान	लेवेंस टेस्ट मान
		माध्य	मानक विचलन	माध्य	मानक विचलन		
(अ)	संवेगात्मक बुद्धि	74.96	7.83	71.51	6.67	7.084**	1.141*
(ब)	उपलब्धि अभिप्रेरण	136.92	18.607	137.29	18.578	-.302	.006*
(स)	शैक्षिक उपलब्धि	72.56	9.98	76.22	10.80	-5.223**	1.207*

\*\* सार्थकता स्तर= .01, \*सार्थकता स्तर= .05

अंतर सार्थकता के स्तर पर नहीं है।

प्रस्तुत आँकड़ों के माध्य अंकों को देख कर ज्ञात होता है कि सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों का संवेगात्मक बुद्धि गुणांक, गैर-सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों से अपेक्षाकृत अधिक है। यह सांख्यिकीय परिणाम हैरान करने वाले हैं। सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों में संवेगात्मक बुद्धि का अधिक पाया जाना अवश्य ही उन परिस्थितियों का परिणाम हो सकता है, जिनमें उनका पालन-पोषण होता है। सरकारी विद्यालय में पढ़ने वाले विद्यार्थियों पर अनेक ज़िम्मेदारियाँ होती हैं जिसके कारण उन्हें अपने संवेगों पर नियंत्रण रखना आ जाता है। सरकारी और गैर-सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों में उपलब्धि अभिप्रेरण में सार्थक अंतर ना पाया जाना यह सुनिश्चित करता है कि सरकारी विद्यालय के विद्यार्थी भी अपनी उपलब्धि को लेकर प्रेरित हैं। परंतु शोधक ने पाया कि सरकारी विद्यालय के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि गुणांक, गैर-सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों से कम हैं, ये आँकड़े हमारी शैक्षिक व्यवस्था पर सवाल उठाते हैं। अपनी उपलब्धि के लिए प्रेरित होते हुए भी सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों

की शैक्षिक उपलब्धि कम होने के कारणों में संसाधनों की कमी, अप्रभावी अधिगम प्रक्रिया, परीक्षा की अपूर्ण तैयारी जैसे कई कारण सम्मिलित हो सकते हैं।

**परिकल्पना  $H_{04}$  — आवासीय और गैर-आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि उपलब्धि अभिप्रेरण और शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं है**

तालिका 4 में लेवेंस टेस्ट के परिणामों को ध्यानपूर्वक देखने के बाद ज्ञात होता है कि F मूल्य जो क्रमशः .729, 1.140 और 1.454 है जो .05 सार्थकता स्तर पर सार्थक है। यह प्रदर्शित करता है कि शून्य परिकल्पना कि समूहों में परिवर्तनशीलता समान है, अस्वीकृत नहीं होती। अतः कहा जा सकता है कि समूहों में सजातीयता विद्यमान है।

तालिका 4 से स्पष्ट है कि आवासीय तथा गैर-आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि लब्धि, उपलब्धि अभिप्रेरण तथा शैक्षिक उपलब्धि का 't' मान 8.825 और 4.611 तथा 5.553 है, जो .01 सार्थकता स्तर पर सार्थक है। यह प्रमाणित करता है कि संबंधित आँकड़ों में आवासीय तथा गैर-आवासीय विद्यालयों

**तालिका 4 — आवासीय एवं गैर-आवासीय विद्यार्थियों के मध्य संवेगात्मक बुद्धि, उपलब्धि अभिप्रेरण और शैक्षिक उपलब्धि की तुलना**

	विभिन्न पैमाने	आवासीय विद्यार्थी (N=429)		गैर-आवासीय विद्यार्थी (N=463)		't' मान	लेवेंस टेस्ट मान
		माध्य	मानक विचलन	माध्य	मानक विचलन		
(अ)	संवेगात्मक बुद्धि	75.29	7.32	71.07	6.95	8.825**	.729
(ब)	उपलब्धि अभिप्रेरण	140.07	18.95	134.39	17.86	4.611**	1.140*
(स)	शैक्षिक उपलब्धि	76.55	9.71	72.67	11.02	5.553**	1.454

\*\* सार्थकता स्तर= .01, \* सार्थकता स्तर= .05

के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि, उपलब्धि अभिप्रेरण और शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर है। अतः कहा जा सकता है कि परिकल्पना  $H_0(1)$ ,  $H_0(2)$ ,  $H_0(3)$  कि संवेगात्मक बुद्धि, उपलब्धि अभिप्रेरण और शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं है, अस्वीकृत होती है।

तालिका 4 को ध्यानपूर्वक देखने के बाद यह भी ज्ञात होता है कि आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि लब्धि, उपलब्धि अभिप्रेरण और शैक्षिक उपलब्धि के अंकों का माध्य क्रमशः 75.29, 140.07 और 76.55 है, तो वहीं गैर-आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि लब्धि, उपलब्धि अभिप्रेरण और शैक्षिक उपलब्धि के अंकों का माध्य क्रमशः 71.07, 134.39 और 72.67 है। इनका माध्य मूल्य बताता है कि आवासीय तथा गैर-आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि, उपलब्धि अभिप्रेरण और शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर है।

प्रस्तुत आँकड़ों के माध्य अंकों को देखकर ज्ञात होता है कि आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि लब्धि, उपलब्धि अभिप्रेरण तथा शैक्षिक उपलब्धि गैर-आवासीय विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक है। प्रस्तुत सांख्यिकी परिणाम का कारण आवासीय विद्यालयों का प्रभावी पर्यावरण हो सकता है। आवासीय विद्यालयों में विद्यार्थी, शिक्षकों के विशेष निरीक्षण में रहते हैं। जहाँ उन पर अनेक ज़िम्मेदारियाँ होती हैं। अपने माता-पिता व परिजनो से दूर ये विद्यार्थी अपने संवेगों पर नियंत्रण करना, साथियों के भावों को समझना, परिस्थितियों से समझौता करना सीख जाते हैं। इन्हीं का परिणाम

है कि उनकी शैक्षिक उपलब्धि गैर-आवासीय विद्यार्थियों से बेहतर है।

### परिणाम

इस शोध के परिणाम दर्शाते हैं कि संवेगात्मक बुद्धि और उपलब्धि अभिप्रेरण का विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के साथ संबंध है। यह संबंध बहुत मजबूत नहीं है, परंतु 0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक है और निश्चित तौर पर विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करते हैं। यह शोध यह भी बताता है कि विभिन्न वर्गों में स्वतंत्र चरों का अलग-अलग प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इस शोध से यह पता चलता है कि लड़कों और लड़कियों के संवेगात्मक बौद्धिक स्तर में कोई विशेष भिन्नता नहीं दिखाई पड़ती, जबकि लड़कियों में उपलब्धि अभिप्रेरण स्तर लड़कों की तुलना में अधिक है। परंतु शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं होना यह बताता है कि उपलब्धि के प्रति अधिक प्रेरित होते हुए भी लड़कियाँ शैक्षिक उपलब्धि में प्रभावपूर्ण अंतर नहीं बना पा रही हैं अर्थात् कुछ और भी कारक हैं जो लड़कियों की शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित कर रहे हैं। शोध परिणामों से यह भी परिलक्षित होता है कि सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थी संवेगात्मक रूप से गैर-सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों से अधिक सबल हैं। वे गैर-सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों की भाँति अभिप्रेरित भी हैं। परंतु शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर इस बात की ओर संकेत करता है कि कई अन्य कारकों पर ध्यान देने की आवश्यकता है। इस शोध के परिणाम यह भी दर्शाते हैं कि आवासीय विद्यालयों में रहने वाले विद्यार्थियों का भावनात्मक बुद्धि गुणांक और उपलब्धि अभिप्रेरण गैर-आवासीय विद्यालयों के विद्यार्थियों से अधिक



है और इन विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि भी अधिक आँकी गई है।

### निष्कर्ष

वर्तमान परिवेश में विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि बहुत ही आवश्यक विषय है। शैक्षिक जगत में नित नए आविष्कार तथा शोध कार्य हो रहे हैं ताकि विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में सुधार हो। उपरोक्त परिणामों के आधार पर कहा जा सकता है कि संवेगात्मक बुद्धि और उपलब्धि अभिप्रेरण जैसे गैर-संज्ञानात्मक कारकों का विद्यार्थियों की सफलता के साथ सीधा संबंध है। विद्यार्थियों की सफलता को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है कि उन्हें संवेगात्मक रूप से मजबूत बनाया जाए। ताकि विभिन्न परिस्थितियों में वे अपनी भावनाओं को नियंत्रित करके सफलता के मार्ग पर निरंतर प्रयासरत रहें तथा उन्हें नियमित रूप से बेहतर उपलब्धि के लिए प्रेरित करने की आवश्यकता है। सरकारी विद्यालयों की छात्राओं पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। शोध इस ओर भी संकेत करता कि आवासीय विद्यालयों का वातावरण, अनुशासन, नियमित अभिप्रेरण और अभ्यास का प्रभाव विद्यार्थियों की उपलब्धि पर पड़ता है। अतः शिक्षकों, शिक्षाशास्त्रियों, विद्यालयों के प्रबंधकों और अभिभावकों को इस दिशा में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

### शैक्षिक निहितार्थ

इस शोध कार्य के परिणाम वर्तमान शैक्षिक जगत के लिए लाभदायक हो सकते हैं। इस शोध कार्य के परिणाम शिक्षकों, प्रशासनिक अधिकारियों, शोधकों, नीति-निर्माताओं एवं अभिभावकों के

लिए कैसे उपयोगी हो सकते हैं। इसका विवरण इस प्रकार है —

- **शिक्षकों के लिए**— इस शोध कार्य के परिणाम शिक्षकों को विद्यार्थियों के संवेगात्मक बुद्धि का उचित प्रयोग करने लिए प्रेरित करेंगे तथा वे बेहतर उपलब्धि के लिए विद्यार्थियों को प्रेरित करेंगे।
- **प्रशासनिक अधिकारियों के लिए** — इस शोध कार्य के परिणाम प्रशासनिक अधिकारियों विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि को बढ़ाने के लिए तथा विद्यार्थियों को नियमित रूप से प्रोत्साहित और प्रेरित रखने के लिए विशिष्ट प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन करने के लिए प्रेरित करेंगे ताकि उनका शैक्षिक उपलब्धि परिणाम अच्छा रहे।
- **शोधकों के लिए**— शोधक इस दिशा में विस्तृत क्षेत्र और व्यापक कारकों पर आधारित शोध करने के लिए प्रेरित होंगे।
- **नीति-निर्माताओं के लिए**— इस शोध द्वारा नीति-निर्माताओं को शैक्षिक व्यवस्था के लिए ऐसी नीतियाँ बनाने में सहायता मिलेगी, जो विद्यार्थियों के गैर-संज्ञानात्मक कारकों के विकास पर भी गौर करेगी व विद्यालय प्रशासन और शिक्षकों को उचित रूप से निर्देशित करेगी।
- **अभिभावकों के लिए**— यह शोध कार्य अभिभावकों को भी प्रेरित और निर्देशित करता है कि वे किशोरावस्था में लड़कों एवं लड़कियों के लिए किस प्रकार का वातावरण व परिस्थितियाँ निर्मित करें, जिससे वे संयमित और अभिप्रेरित रहें।

## संदर्भ

- अमालू, एन. मेलविना. 2018. इमोशनल इंटेलिजेंस एज ए प्रीटिक्टर ऑफ एकेडमिक परफोमेंस अमंग सेकंडरी स्कूल स्टूडेंट्स इन मुकर्दी मेट्रोपोलिस ऑफ बेनुए स्टेट. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ साइंटिफिक रिसर्च इन एजुकेशन*. 11 (1), पृ. 63–70. <http://www.ijrsre.com>.
- अवान, रिफत-उन-निसा, नौरीन, गजाला और मिस. अंजुम नाज़. 2011. ए स्टडी ऑफ रिलेशनशिप बिटवीन अचीवमेंट मोटिवेशन, सेल्फ कॉन्सेप्ट एंड अचीवमेंट इन इंग्लिश एंड मैथमेटिक्स एट सेकंडरी लेवल. *इंटरनेशनल एजुकेशनल स्टडीज़*. वॉल्यूम 4, नंबर 3, अगस्त 2011.
- इलियट, ए. जे., और मैक ग्रेगोर एच. ए. 2001. ए2x2अचीवमेंट गोल फ्रेमवर्क. *जर्नल ऑफ पर्सनैलिटी एंड सोशल साइकॉलजी*. 80 (3) पृ. 501–519
- कालोजी, सबीना. 2010. द रोल ऑफ अचीवमेंट मोटिवेशन इन एजुकेशनल एस्पिरेशन एंड परफॉर्मेंस. *जनरल एंड प्रोफेशनल एजुकेशन*. पृ. 42–47. कोज्मिन्सकी यूनिवर्सिटी, पोलैंड.
- कुमारी, कल्पना और एस. एच. कासिम. 2015. ए स्टडी ऑफ अचीवमेंट मोटिवेशन इन रिलेशन टू एकेडमिक अचीवमेंट ऑफ हायर सेकंडरी स्टूडेंट. *इंडो-इंडियन जर्नल ऑफ सोशल साइंस रिसर्च*. वॉल्यूम 11. नंबर 1, अप्रैल 2015, पृ. 56–59.
- गोलमेन, डी. 1995. *इमोशनल इंटेलिजेंस*. न्यूयॉर्क, एन. वाई., इंग्लैंड. बैटम बुक्स, इंक.
- डूलेविटज़, वी. और एम. हिम्स. 1999. कैन इमोशनल इंटेलिजेंस बी मेज़र्ड एंड डेवलप? *लीडरशिप एंड ऑर्गनाइज़ेशन डेवलपमेंट जर्नल*. 20. पृ. 242–252.
- बा. ए. फातुम. 2008. द रिलेशनशिप बिटवीन इमोशनल इंटेलिजेंस एंड एकेडमिक अचीवमेंट इन एलीमेंट्री स्कूल चिल्ड्रन. यूनिवर्सिटी ऑफ सेन फ्रांसिस्को कैलिफोर्निया.
- बार-ऑन, आर. 2000. इमोशनल एंड सोशल इंटेलिजेंस-इनसाइट्स फ्रॉम द इमोशनल क्योशेंट इन्वेंट्री (ई-क्यू). आर बार-ऑन और जे. डी. ए. पार्कर. (संपादक). *हैंडबुक ऑफ इमोशनल इंटेलिजेंस*. सेन फ्रांसिस्को, जोस्सेय बास.
- भदौरिया, प्रीती. 2013. रोल ऑफ इमोशनल इंटेलिजेंस फॉर एकेडमिक अचीवमेंट फॉर स्टूडेंट्स. *रिसर्च जर्नल ऑफ एजुकेशनल साइंसेज़*. वॉल्यूम 1(2), 2013:5: पृ. 8–12. [www.isca.in](http://www.isca.in)
- मिनी, सप्रे. 2018. ए स्टडी ऑफ स्ट्रेस, एंज़ायटी एंड डिप्रेशन इन सेकंडरी स्कूल स्टूडेंट्स इन रिलेशन टू देयर इमोशनल इंटेलिजेंस. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस रिसर्च एंड डेवलपमेंट*. वॉल्यूम 3, इश्यू 1, पृ. 361–366.
- मेहर, एल. 2008. कल्चर एंड अचीवमेंट मोटिवेशन. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ साइकॉलजी*. 43: 5, पृ. 917–918.
- मैक क्लेल्लैंड, डी. सी. 1985. *ह्यूमन मोटिवेशन*. स्कॉट फोरस्मा, शिकागो.
- . 1961. *द अचीविंग सोसाइटी*. पृ. xv–512. प्रिंसटन, डी वेन नोस्त्रंद कंपनी.
- मैक क्लेल्लैंड, डी.सी. और डी.जी. विंटर. 1969. *मोटिवेटिंग इकोनोमिक अचीवमेंट*. फ्री प्रेस, न्यूयॉर्क.
- मैज़तुल अकमल मोहम्मद, मोहज़न नोर्हस्तिला हसन, नोर्हफिजाह अब्दुल हलील. 2013. द इम्प्लुएंस ऑफ इमोशनल इंटेलिजेंस ऑन एकेडमिक अचीवमेंट. *प्रोसेडिया-सोशल एंड बिहेवियरल साइंसेज़*. 90, 2013: 303–312. एलज़ेवियर [www.sciencedirect.com](http://www.sciencedirect.com)

- युसूफ, एच. टी. युसूफ, ए. और ए. आई. गाम्बरी 2015. इमोशनल इंटेलिजेंस ऑफ़ द स्टूडेंट्स-टीचर्स इन रिलेशन टू देयर फ़्यूचर प्रोडक्टिविटी. *द अफ्रीकन सिम्पोज़ियम*. वॉल्यूम 15, नंबर-1.2015:7. पृ. 25-34.
- रॉय बबली, सिन्हा रश्मि और सपना सुमन. 2013. इमोशनल इंटेलिजेंस एंड एकेडमिक अचीवमेंट मोटिवेशन अमंग एडोलसेंस—ए रिलेशनशिप स्टडी. *जर्नल ऑफ़ आर्ट्स, साइंस एंड कॉमर्स*. वॉल्यूम IV, इश्यू 2013: 2: पृ. 126-130. [www.researchersworld.com](http://www.researchersworld.com)
- लब्बी, एस. लूनेबर्ग एफ़. सी. स्लेट जे. आर. 2012. *इमोशनल इंटेलिजेंस एंड एकेडमिक सक्सेस – ए कन्सेप्चुअल एनालिसिस फ़ॉर एजुकेशनल लीडर्स*. एन.वी.पी.इ.ए. वर्जन – 1.2: 2012.
- लेस्ली, के. 2007. *द इम्पैक्ट ऑफ़ इमोशनल इंटेलिजेंस ऑन द एकेडमिक परफ़ॉर्मेंस ऑफ़ एट-रिस्क हाई स्कूल स्टूडेंट्स*. यूनिवर्सिटी ऑफ़ द इनकानेर्ट.
- सेथ, आर. लैंगली और एम. बार्ट विलियम. 2017. *एक्जामिन सेल्फ़-रेगुलेटरी फैक्टर्स डेट इंप्लुएंस द एकेडमिक अचीवमेंट ऑफ़ अंडरप्रिपेर्ड कॉलेज स्टूडेंट्स*. वॉल्यूम 25, इश्यू-1 आरटीडीई 10. <http://about.jstor.org/terms>
- [https://www.researchgate.net/publication/287999909\\_EMOTIONAL\\_INTELLIGENCE\\_OF\\_STUDENT\\_TEACHERS\\_IN\\_RELATION\\_TO\\_THEIR\\_FUTURE\\_PRODUCTIVITY](https://www.researchgate.net/publication/287999909_EMOTIONAL_INTELLIGENCE_OF_STUDENT_TEACHERS_IN_RELATION_TO_THEIR_FUTURE_PRODUCTIVITY)
- <https://www.yourcoach.be/en/employee-motivation-theories/mcclelland-achievement-and-acquired-needs-motivation-theory.php>

# शिक्षा और जटिल होते समाज के विमर्शों की पड़ताल

ऋषभ कुमार मिश्र\*

समरजीत यादव\*\*

---

पुस्तक का नाम	:	शिक्षा और आधुनिकता — कुछ समाजशास्त्रीय नज़रिए
लेखक	:	अमन मदान
प्रकाशक	:	एकलव्य प्रकाशन, भोपाल
मूल्य	:	₹100

---

शिक्षा और आधुनिकता — कुछ समाजशास्त्रीय नज़रिए अमन मदान द्वारा सरल सुबोध भाषा में लिखी गई पुस्तक है। इसमें व्यक्ति, समाज व शिक्षा के संबंधों को 'आधुनिकता' की विश्व दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। लेखक पुस्तक की प्रस्तावना में अपने उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए बताते हैं कि उनका लक्ष्य बदलते समाज में शिक्षा की भूमिका को समझना और समझाना है। प्रायः शिक्षा के अध्येताओं को शिक्षा का मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य आकर्षित करता है। इसकी अपनी प्रासंगिकता है, लेकिन लेखक का मानना है कि इसके द्वारा व्यक्ति-केंद्रित संज्ञान, ज्ञान, निर्माण और मनोवैज्ञानिक चरों के अध्ययन से शिक्षा और समाज के समग्र संबंध को नहीं समझा जा सकता है। अपने तर्क के संबंध में वे कुछ महत्वपूर्ण शैक्षिक सवालों

का उदाहरण देते हैं। उदाहरण के लिए, स्कूल के कुछ बच्चे पीछे क्यों रह जाते हैं? शिक्षा में साधन कैसे और किसे मिलते हैं? अलग-अलग समाज किस तरह की शिक्षा चाहते हैं? लेखक का मानना है कि उक्त समस्याओं का समाजशास्त्रीय विश्लेषण उन सामाजिक टकरावों और अंतर्विरोधों को उजागर करता है जिसके बीच में शिक्षा कार्य कर रही है। इस तर्क के सहारे आगे बढ़ते हुए व्याख्या की गई है कि शिक्षा के उद्देश्य स्थिर और अपरिवर्तनीय नहीं होते हैं, बल्कि उनका संबंध इतिहास और समाज की संरचना से होता है। यह स्थापना पाठक के लिए संकेत है कि वह इन संरचनाओं को समझे बिना शिक्षा की भूमिका पर विचार नहीं कर सकता है। पुस्तक की पूर्व-पीठिका के रूप में पहले अध्याय में लेखक ने 'शिक्षा और समाज' के संबंध को समझने

---

\* असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, शिक्षा विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र – 442 001

\*\* असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, शिक्षा विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र – 442 001

के लिए तीन आयाम प्रस्तुत किए हैं— उत्पादन, आदान-प्रदान और उपभोग की बदलती व्यवस्था, बढ़ती सामाजिक जटिलता और नौकरशाही संगठनों का प्रभाव। आगे के अध्यायों में इन्हीं आयामों की व्याख्या की गई है।

अध्याय 2 में लेखक ने विस्तृत विवेचना की है कि 'हमारा समाज सरल से जटिल होता जा रहा है।' इस कारण शिक्षा के आधारभूत सवाल भी बदल रहे हैं। जटिलता की ओर बढ़ते समाज में आपने सांस्कृतिक विश्वासों, मूल्यों व व्यवहारों में बदलावों को रेखांकित किया है। इनके परिणामस्वरूप सामाजिक रिश्तों एवं व्यक्ति की भूमिकाओं के नए ढाँचे पैदा हो रहे हैं। लेखक दो तरह के समाजों का उदाहरण लेते हैं—सरल समाज और जटिल समाज। इन दोनों तरह के समाजों में शिक्षा की भूमिका में अंतर के बारे में इनका मानना है कि अपेक्षाकृत सरल समाजों में शिक्षा की प्रक्रिया व्यक्तिगत स्नेह एवं व्यक्तिगत भिन्नता का आदर करती है जबकि जटिल होते समाज में रिश्ते निर्वैयक्तिक होते जाते हैं। एमिल दुर्खीम (1857-1917) के सिद्धांत को आधार मानते हुए लेखक समाज की जटिलता का आरंभ बिंदु, औद्योगिकीकरण को मानते हैं। औद्योगिकीकरण के परिणामस्वरूप समाज में व्यक्ति की भूमिका में विविधता और विशेषज्ञता पैदा हुई। समुदाय में आपसी निर्भरता बढ़ी। इन सब के परिणामस्वरूप शिक्षा से हमारी अपेक्षा और समाज पर शिक्षा के प्रभाव भी बदल गए। इन बदलावों का उल्लेख करते हुए लेखक लिखता है कि, "जटिल समाजों में स्थितियों से निपटने के तौर-तरीके सरल समाजों से बिल्कुल अलग होते हैं।" इस स्थिति में नई

परिस्थितियों के लिए नई विधियों और व्यवस्थाओं की आवश्यकता पड़ती है। इस आवश्यकता के कारण ही वर्तमान में शिक्षा से यह अपेक्षा की जाती है कि वह युवा पीढ़ी को जटिल समाज के तौर-तरीके सिखाए। ये तौर-तरीके वर्तमान ज़रूरतों के अनुकूल हों और भविष्य के लिए भी तैयार करें।

जटिल समाजों की एक अन्य विशेषता बताते हुए लेखक व्याख्या करता है कि हमारा समाज विशिष्टतावादी से सार्वभौमिकतावादी संस्कृति की ओर अग्रसर हो रहा है। विशिष्टतावादी संस्कृति में व्यक्तिगत परिवार आधारित रिश्तों को महत्व प्रदान किया जाता है, जबकि सार्वभौमिकतावादी संस्कृति में गैर-पारिवारिक स्थितियाँ महत्वपूर्ण होती हैं। लेखक उदाहरण देता हुए बताता है कि विशिष्टतावादी संस्कृति में 'मैं', 'मेरा परिवार' और 'उसका इतिहास' जैसे सवाल महत्वपूर्ण होते हैं, जबकि सार्वभौमिकतावादी संस्कृति में 'मैं किस स्कूल में पढ़ता हूँ?', 'मैं किस कारखाना में कार्य करता हूँ?' जैसे सवाल महत्वपूर्ण हो जाते हैं। सार्वभौमिकतावादी संस्कृति सामाजिक व्यवहारों और रिश्तों में अधिक समतामूलक होती है। इसमें 'अपनेपन' का आग्रह कम हो जाता है, इस कारण व्यक्ति सार्वभौमिक मूल्यों के सापेक्ष सोच सकता है। उदाहरण के लिए, उसे बोध होता है कि लोकतांत्रिक प्रणाली में सभी के विचारों का महत्व है न कि केवल उन लोगों के विचारों का महत्व, जिन्हें हम पसंद करते हैं। वह मानता है कि शिक्षा-प्रक्रिया में रक्त संबंधों आदि के आधार पर भेदभाव नहीं करना चाहिए। इस व्याख्या के दौरान लेखक पाठकों को सचेत करता है कि जटिल समाज में सार्वभौमिक

संस्कृति ही सर्वमान्य हो, यह पूर्णतः सत्य नहीं है। जटिल समाजों में भी विशिष्टतावादी संस्कृति के लक्षण पाए जाते हैं अर्थात् व्यक्ति अपने व्यक्तिगत संबंधों और प्राथमिकताओं के प्रति आग्रह रखता है। इसी कारण जटिल समाजों की एक प्रमुख चुनौती एकजुटता को बनाए रखना है। दुर्खीम का संदर्भ लेते हुए लेखक मानता है कि जटिल समाजों में एकजुटता बनाना कठिन कार्य होता है। जटिल समाजों की यह चुनौती होती है कि कैसे विभिन्न वर्गों के बीच जुड़ाव की भावना रची जाए। लेखक इसके लिए अनुबंधी एकजुटता और जैविकीय एकजुटता की चर्चा करते हैं। अनुबंधीय एकजुटता बाज़ार आधारित लेन-देन और फ़ायदे से प्रेरित होती है। इसमें संभावना रहती है कि जैसे बाज़ार में सौदेबाज़ी की स्थितियाँ बदलेंगी वैसे ही सामाजिक रिश्ते भी बदल जाएंगे। जबकि जैविक एकजुटता ऐसी संस्कृति पर आधारित होती है जो विभिन्न सामाजिक समूहों व विभाजनों के बीच संवाद स्थापित करती है। लेखक रेखांकित करता है कि अलग-अलग पहचानों वाले लोग एक-दूसरे से भावनात्मक रूप से जुड़ें, इसके लिए स्कूलों को कार्य करना होगा। निहितार्थ है कि शिक्षा का उद्देश्य जैविकीय एकजुटता को पुष्ट करना है। स्कूल अपनी भूमिका को निभाएँ इसकी निगरानी का दायित्व सरकार का है, इसके लिए सरकार की नीतियों को भी लोकतांत्रिक, समतामूलक व न्यायपूर्ण होना होगा।

जटिल समाज के व्यक्ति की विशेषताओं के बारे में लेखक का मानना है कि, “जटिल समाजों की अधिक उलझी हुई भूमिकाएँ यह माँग करती हैं कि लोग अपने काम का स्वतंत्र आकलन करें, आत्मनिर्भर हों, निर्णय लेने से ना घबराएँ जो औरो

से अलग हों” प्रथम दृष्टया इन विशेषताओं वाले व्यक्ति की चेतना रूपांतरणकारी ज्ञात पड़ती है लेकिन लेखक का मानना है कि ऐसे व्यक्ति के प्रकट होने से उसकी परंपरागत संस्कृति व नई संस्कृति के बीच एक द्वंद पैदा होता है। वह न तो अपनी परंपरागत पहचान को छोड़ने के लिए तैयार होता है और न ही नई संस्कृति के आकर्षण से स्वयं को मुक्त रख पाता है। इस स्थिति का विकास और समाधान शिक्षा द्वारा हो सकता है। जहाँ शिक्षा आधुनिक चेतना के विकास से संस्कृतियों के टकराहट का रास्ता खोलती है, वहीं यह इनके बीच सामंजस्यपूर्ण समाधान का रास्ता भी प्रशस्त करती है।

अध्याय 3 में लेखक ‘एक वस्तु के रूप में शिक्षा की व्याख्या’ करता है। आपका मानना है कि वैश्वीकरण और निजीकरण के प्रभाव में शिक्षा एक वस्तु बन गई है, जिसका मूल्य पैसों में मापा जा रहा है। कोचिंग सेंटर, इंटरनेशनल स्कूल आदि का उदाहरण लेते हुए लेखक बाज़ार के नियमों और शिक्षा की मौद्रिक भूमिका की चर्चा करते हैं। इस अध्याय में कार्ल पोलांन्यी की शब्दावली प्रयोग करते हुए समाज में ‘शिक्षा के आदान-प्रदान के तरीके’ के तीन मॉडलों (प्रतिमान) का उल्लेख है। प्रथम, पारस्परिकता का मॉडल, जहाँ व्यक्तिगत एवं सामुदायिक संबंधों और ज़रूरतों के आधार पर लोगों को शिक्षा दी जाती है। दूसरा, पुनर्वितरण का मॉडल, जहाँ पैसों के लेन-देन के बदले राजनैतिक एवं सांस्कृतिक लेन-देन को अधिक महत्व दिया जाता है, जैसे — ज़मींदार लोग लगान के रूप में एकत्रित अनाज को पाठशाला और शिक्षकों को बाँटते हैं। इसका उद्देश्य लाभ कमाना न होकर उपकृत समाज को अपने पक्ष में करना होता है।

इसी का प्रभाव होता है कि शिक्षक वर्ग ज़मींदार पर सवाल नहीं उठाता है। तीसरा, वस्तु का मॉडल, जिसमें शिक्षा जैसी सेवाओं को वस्तु मानकर बाज़ार के भरोसे छोड़ दिया जाता है। लेखक का मानना है कि वर्तमान तीसरे मॉडल का अधिक चलन है। चूँकि बाज़ारीकरण के दौर में सामाजिक संबंध 'घुल' जाते हैं अर्थात् 'पैसे और बाज़ार के ज़रिए लोगों और साधनों को उनको परिवेश से निकाल कर एक जगह से दूसरी जगह ले जाया जाता है। इसके चलते तमाम संबंध और लेन-देन बंधनों और रूढ़ियों से आज़ाद हो जाते हैं।" इसलिए शिक्षा और उसके लाभार्थियों को लाभ देने के लिए बाज़ार की शक्तियाँ लुभा रही हैं। लेखक, ग्राहक में तबदील होते समाज की विशेषताओं का उल्लेख भी करता है। इससे व्यक्तियों के पुराने रिश्ते व सामाजिक हैसियत के बदले व्यक्ति को बाज़ार के सापेक्ष देखा जाता है। शिक्षा और बाज़ार के संबंध ने समाज में शिक्षा की भूमिका में बुनियादी परिवर्तन ला दिया है। अब शिक्षा सांस्कृतिक भूमिका के स्थान पर मज़दूरी के बाज़ार में महत्वपूर्ण पद दिलाने के उद्देश्य से संचालित होती है। लेखक पाठकों को यह भी सचेत करता है कि शिक्षा के एक वस्तु के रूप में रूपांतरित होने के कारण ज़्यादा पैसे वालों का शिक्षा पर अधिकार बढ़ रहा है। बाज़ार के लिए उपयोगी ज्ञान व कुशलता के लिए शिक्षा दी जा रही है, जबकि सामाजिक बदलावों के लक्ष्य की उपेक्षा होती जा रही है। इस सब के प्रभाव में स्कूलों में शिक्षक और बच्चे का रिश्ता, विक्रेता व ग्राहक का होता जा रहा है।

शिक्षा और बाज़ार के संबंध की इस पृष्ठभूमि में अध्याय 4 'पूँजीवाद व शिक्षा के संबंध की व्याख्या' करता है। पूँजीवाद की आधारभूत विशेषताओं को

रेखांकित करते हुए इस अध्याय में बताया गया है कि बाज़ार की ताकत का विस्तार, लाभ के लिए व्यापार, प्रतिस्पर्धा, पूँजी के उत्पादन को वास्तविकता मानता है। लेखक बेंगलुरु की महानगरीय संस्कृति का उदाहरण लेते हुए पूँजीवाद से पैदा हुए सामाजिक बदलावों को समझाता है। आपका स्पष्ट मानना है कि बाज़ारीकरण के प्रभाव में नए ज़माने के युवक-युवतियों के लिए कामयाबियों की परिभाषा बदली है। वे नई जीवन शैली को अपना रहे हैं। उनका तकनीकी और आरामदायक सुविधाओं के प्रति मोह बढ़ा है। इन परिस्थितियों में पूँजीवाद की माँग है कि शिक्षा लोगों को नौकरियों के काबिल बनाए, न कि महज़ संस्कार दे। लेखक यह भी बताता है कि पूँजीवाद की प्रतिक्रिया के स्वरूप सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रियाएँ भी सक्रिय हैं। वह शिक्षक के दायित्व का उदाहरण लेते हुए पूँजीवाद की समर्थक शिक्षा और पूँजीवाद की प्रतिक्रिया में शिक्षा का उदाहरण देता है। जब शिक्षक पूँजीवाद का समर्थन करेगा तो उसका दायित्व बाज़ार के लिए मज़दूर तैयार करना होगा। जबकि जब शिक्षक पूँजीवाद की प्रतिक्रिया को स्वीकार करेगा तो वह सशक्त व्यक्तियों का निर्माण करना, शिक्षा का लक्ष्य रखेगा। इस अध्याय के अंतिम हिस्से में लेखक 'पूँजीवाद के सापेक्ष सरकार की भूमिका' को उभारता है। लेखक के अनुसार भारतीय संविधान में जनतांत्रिक तरीके से चुनी गई सरकार का एक प्रयोग समाज की ज़रूरतों को संबोधित करना था, न कि कुछ चुने हुए लोगों के फ़ायदे के लिए कार्य करना। इसी कारण आज़ादी के बाद सरकार ने निजी क्षेत्र के बदले स्वयं के हस्तक्षेप से विकास को दिशा दी। सरकार ने जनशिक्षा के प्रसार को बल दिया। यही वह दौर था जब सरकारी विद्यालयों और

शिक्षकों की प्रतिष्ठा निजी विद्यालयों से अधिक थी। लेखक यह भी चर्चा करता है कि 1970-80 के बीच लाइसेंस राज के कारण सरकार की साख में गिरावट हुई। इस दशा में ऐसा माना जाने लगा कि सरकार के बदले निजी क्षेत्र अधिक प्रभावशाली ढंग से समस्याओं का समाधान कर सकते हैं। इस सहमति के साथ वैश्वीकरण की नीतियों को बल मिला। अंततः 1990 के आस-पास शिक्षा में निजीकरण की प्रवृत्ति को स्वीकार कर लिया गया। इसका प्रभाव यह हुआ कि शिक्षा का लाभ संपन्न लोगों के पक्ष में स्थानांतरित हो रहा है। शिक्षा पर कॉर्पोरेट घरानों का एकाधिकार हो रहा है। क्षेत्रीय विकास में असमानता पैदा हो गई है। शिक्षा द्वारा सुरक्षित भविष्य के लालच में आम आदमी अपना सब कुछ दाँव पर लगा रहा है। लेखक यह सुझाता है कि शिक्षा व्यक्ति को ताकतवर बनाए इसके लिए आवश्यक है कि जनतांत्रिक सरकारें आम आदमी की आवश्यकताओं को अपनी नीतियों में स्थान दें, न कि वे अपनी भूमिका बाज़ार के पोषक के रूप में सीमित करें।

अगले अध्याय में लेखक मैक्स वेबर के विचारों का संदर्भ लेते हुए शिक्षा के औपचारिक संगठनों की विशिष्टताओं से परिचित कराता है। लेखक औपचारिक संगठनों के लक्षण गिनाता है — काम को छोटी इकाइयों में बाँटना, एक व्यवस्था निर्मित करना, स्पष्ट नियम, साक्षरता, पदानुक्रम, रूटीनीकरण और निर्वैयक्तिक रवैया। लेखक का मानना है कि शिक्षा में औपचारिक संगठनों की व्यवस्था सृजनात्मकता और भावनात्मकता जैसे पक्षों की उपेक्षा कर, शक्ति के केंद्रीकरण और वर्चस्व का माहौल तैयार कर रही है। इसी कारण स्कूल, कारखाने बनते जा रहे हैं जो

आज्ञाकारी और विनम्र विद्यार्थी तैयार कर रहे हैं, जिनमें जिज्ञासा व आलोचनात्मकता का अभाव है। यद्यपि औपचारिक व्यवस्थाओं के लाभ अवश्य हैं, लेकिन हमें ध्यान रखना होगा कि दुनिया को उपकरण मानकर नहीं चलाया जा सकता है। यह बात शिक्षा के संदर्भ में अधिक महत्वपूर्ण है। हमें अपनी भावी पीढ़ी को केवल समस्याओं के प्रति तर्कवादी चिंतन ही नहीं सिखाना है, बल्कि उन्हें मानवीय भी बनाना है। इवान इलिच के विचारों से सहमत होते हुए लेखक की दृढ़ मान्यता है कि शिक्षक नौकरशाह नहीं हो सकता। इसी कारण वे स्कूलों में शक्ति के विकेंद्रीकरण और कामकाज के अनौपचारिक और मानवीय ढंग का समर्थन करते हैं, जिससे शिक्षा के भागीदारों की रचनात्मकता और मानवीयता को बनाए रखा जा सके।

अंतिम अध्याय में लेखक निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए कहता है कि जटिल समाजों के उदय, बाज़ारीकरण और औपचारिक संगठनों की मौजूदगी के कारण शिक्षा पर आंतरिक व बाह्य दबाव पड़ रहे हैं। हमारे आपसी संबंध व पहचानें भी प्रभावित हो रही हैं। रोज़मर्रा के सवाल, जैसे—बच्चों को कैसे पढ़ाएँ? क्या पढ़ाएँ? आदि इन्हीं प्रवृत्तियों से निर्देशित हो रहे हैं। इस दशा में आधुनिक समाजों में शिक्षा की भूमिका को समझने हेतु केवल बाह्य बदलावों को समझना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि हमें परंपरा और आधुनिकता के विमर्श को अपनी संस्कृति के नज़रिए से देखना होगा। लेखक आधुनिकता के सार्वभौमिक चरित्र की आलोचना करते हैं और बताते हैं कि यह स्थानीय विविधता को नज़रअंदाज़ करती है। इसकी एक अन्य सीमा है कि विज्ञान हर बात का



उत्तर दे सकता है जबकि किसी भी सवाल का कोई एक जवाब नहीं हो सकता। वे नौकरशाहीकरण और तर्कशीलता के बदले पहचान व संस्कृति को पहचानने वाली शिक्षा को अधिक प्रासंगिक और महत्वपूर्ण मानते हैं। इसके आधार पर पाठक की समझ बनती है। स्कूल में साझा संस्कृतियों को स्थान मिलना चाहिए। हमें समस्या समाधान के सार्वभौमिकतावादी नज़रिए के बदले अनूठे समाधान के रास्ते को अपनाना होगा। बाज़ारीकरण और पूँजीवाद, नौकरशाहीकरण के बंधन कमज़ोर होने के बजाय मज़बूत होते जा रहे हैं। इसका एक प्रभाव यह हुआ है कि शिक्षा द्वारा लोगों के जीवन में सुधार हुआ है, वे दमनकारी संबंधों से मुक्त हुए हैं, किंतु बाज़ार पर निर्भरता और प्रतिस्पर्धा जैसी समस्याएँ पैदा हुई हैं। शिक्षा में अति औपचारिकता को स्थान देने के कारण यह बोझ बनती जा रही है। इस संबंध में लेखक कुछ समाधान सुझाता है, जैसे—शिक्षक को स्वायत्तता दी जाए, कक्षा के भीतर मानवीय

माहौल बनाया जाए, विद्यालयी जीवन संस्कृति को केंद्रीय किया जाए और नाना संस्कृतियों के मध्य सहअस्तित्व का पोषण किया जाए। अंततः लेखक मनुष्यों के आलोचनात्मक विवेक पर विश्वास करते हुए सुधी पाठक के लिए सवाल छोड़ता है कि क्या हम एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था बनाना चाहते हैं जो हमारी बुनियादी अभिव्यक्ति को महत्व दे या फिर ऐसी व्यवस्था जो सिर्फ़ ज़्यादा-से-ज़्यादा मुनाफ़े व नियंत्रण की चाहत को बढ़ावा दे।

कुल मिलाकर यह पुस्तक पठनीय है। आरंभ से अंत तक पाठक को बाँधे रखती है। इसमें प्रस्तुत व्याख्याएँ एकांगी न होकर समाज और शिक्षा के पूरक और संतुलित चित्र को प्रस्तुत करती हैं। पुस्तक की भाषा में बोलचाल के शब्दों का प्रयोग है, जिसके कारण यह शिक्षा के अध्येताओं के साथ शिक्षा में रुचि रखने वाले किसी भी पाठक के लिए उपयोगी है। प्रत्येक अध्याय के अंत में अन्य महत्वपूर्ण संदर्भ ग्रंथों का उल्लेख है जो जागरूक पाठकों के लिए मददगार होंगे।

**फॉर्म 4**  
(नियम 8 देखिए)  
**भारतीय आधुनिक शिक्षा**

- |   |   |
|---|---|
| 1. प्रकाशन स्थान  | नयी दिल्ली  |
| 2. प्रकाशन अवधि   | त्रैमासिक   |
| 3. मुद्रक का नाम  | मनोज शर्मा  |
| (क्या भारत का नागरिक है?)   | हाँ   |
| (यदि विदेशी है तो मूल देश का पता)   | लागू नहीं होता  |
| पता   | जी 40 - 41, सैक्टर - 3,<br>नोएडा 201 301  |
| 4. प्रकाशक का नाम   | अनुप कुमार राजपूत   |
| (क्या भारत का नागरिक है?)   | हाँ   |
| (यदि विदेशी है तो मूल देश का पता)   | लागू नहीं होता  |
| पता   | राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और<br>प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग<br>नयी दिल्ली 110 016  |
| 5. अकादमिक मुख्य संपादक का नाम  | जितेन्द्र कुमार पाटीदार   |
| (क्या भारत का नागरिक है?)   | हाँ   |
| (यदि विदेशी है तो मूल देश का पता)   | लागू नहीं होता  |
| पता   | राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और<br>प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग<br>नयी दिल्ली 110 016  |
| 6. उन व्यक्तियों के नाम व पते जो पत्रिका<br>के स्वामी हों तथा समस्त पूंजी के एक<br>प्रतिशत से अधिक के साझेदार या<br>हिस्सेदार हों | अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग<br>राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और<br>प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग<br>नयी दिल्ली 110 016<br>(मानव संसाधन विकास मंत्रालय<br>की स्वायत्त संस्था) |

मैं, अनुप कुमार राजपूत, अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर लिखे विवरण सत्य हैं।

अनुप कुमार राजपूत  
प्रकाशन प्रभाग

### लेखकों के लिए दिशानिर्देश

लेखक अपने मौलिक लेख/शोध पत्र सॉफ़्ट कॉपी (जहाँ तक संभव हो यूनीकोड में) के साथ निम्न पते या ई-मेल journals.ncert.dte@gmail.com पर भेजें –

अकादमिक संपादक

भारतीय आधुनिक शिक्षा

अध्यापक शिक्षा विभाग

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110 016

#### लेखक ध्यान रखें कि लेख/शोध पत्र —

- सरल एवं व्यावहारिक भाषा में हो, जहाँ तक संभव हो लेख/शोध पत्र में व्यावहारिक चर्चा एवं दैनिक जीवन से जुड़े उदाहरणों का समावेश करें।
- विषय-वस्तु लगभग 2500 से 3000 शब्दों या अधिक में हिंदी फ़ॉन्ट में टंकित हो।
- विषय-वस्तु के साथ ही तालिका एवं ग्राफ़ हो तथा व्याख्या में तालिका में दिए गए तथ्यों एवं ग्राफ़ का उल्लेख हो।
- ग्राफ़ अलग से Excel File में भी भेजें।
- विषय-वस्तु में यदि चित्र हो, तो उनके स्थान पर खाली बॉक्स बनाकर चित्र संख्या लिखें एवं चित्र अलग से JPEG फ़ॉर्मेट में भेजें, जिसका आकार कम-से-कम 300 dots per inch (dpi) हो।
- लेखक/शोधक अपना संक्षिप्त विवरण भी दें।
- संदर्भ वही लिखें जो लेख/शोध पत्र में आए हैं अर्थात् जिनका वर्णन लेख/शोध पत्र में किया गया है। संदर्भ लिखने का प्रारूप एन.सी.ई.आर.टी. के अनुसार हो, जैसे—

पाल, हंसराज. 2006. *प्रगत शिक्षा मनोविज्ञान*. हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली.

#### लेख —

- लेख की वर्तमान परिप्रेक्ष्य पर आधारित सार्थक प्रस्तावना लिखें, जो आपके लेख के शीर्षक से संबंधित हो अर्थात् वर्तमान में शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा पर राष्ट्रीय या राज्य स्तर पर जो नीतिगत परिवर्तन आए हैं, उनका समावेश करने का प्रयास करें।
- निष्कर्ष या समापन विशिष्ट होना चाहिए।

#### शोध पत्र —

- शोध पत्र की वर्तमान परिप्रेक्ष्य पर आधारित सार्थक प्रस्तावना एवं औचित्य लिखें, जो आपके शोध पत्र के शीर्षक से संबंधित हो अर्थात् वर्तमान में शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा पर राष्ट्रीय या राज्य स्तर पर जो नीतिगत परिवर्तन आए हैं एवं जो शोध कार्य हुए हों, उनका समावेश करने का प्रयास करें।
- न्यादर्श की पूरी जानकारी लिखें अर्थात् न्यादर्श की प्रकृति, न्यादर्श चयन का तरीका आदि।
- प्रदत्त संकलन के लिए उपयोग किए गए उपकरणों की संक्षिप्त जानकारी दें।
- प्रदत्त विश्लेषण में तथ्यों का गुणात्मक आधार बताते हुए विश्लेषण करें।
- उद्देश्यानुसार निष्कर्ष लिखें तथा समापन विशिष्ट होना चाहिए।
- शोध पत्र के शैक्षिक निहितार्थ भी लिखें अर्थात् आपके शोध निष्कर्षों से किन्हें लाभ हो सकता है।

रजि. नं. 42912/84

विद्यया ऽ मृतमश्नुते



एन सी ई आर टी  
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्  
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING